1998 से निरंतर प्रकाशित

RNI No.MPHIN/2017/73838

ISSN 2581-446X

वर्ष-2, अंक-4, फरवरी-मार्च 2019 ₹ 25/-

कला समय

कला, संस्कृति और विचार की द्वैमासिक पत्रिका

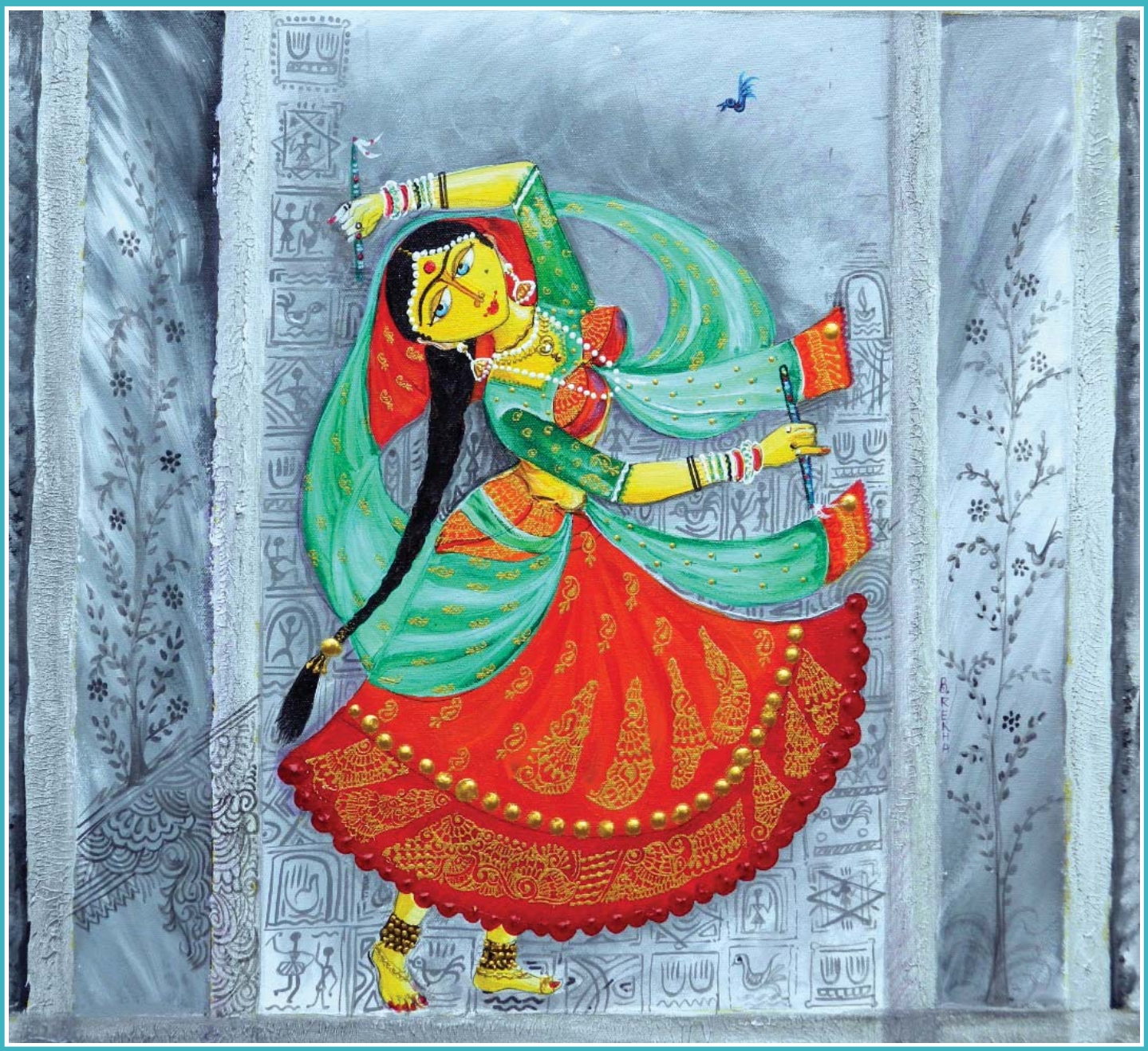

रंगमंच पर एकाग्र

निरंतर प्रकाशन के इक्कीस वर्ष

संपादक
भँवरलाल श्रीवास

मन करता है...

सांझ ढले जब घर के पच्छम
कोने में कंदिल जलता है।
बिन ढक्कन का पेन उठाकर
खत लिखने का मन करता है।।

कितनी मावस स्याह गई
उजली पुनौ दाह गई,
क्या दूज औ शब चौदहवीं,
पड़वा तक परवाह गई।

लेकिन जब डाकिया दीखता,
दिल पतिया पूछन करता है।
नख बरन का कागज़ लेकर
खत लिखने का मन करता है...

पतिया की क्यूं झलक गई
बातें दूर तलक गईं,
मोहर लगे लिफाफे में थी
घूंघट छायी चमक नई।

आखर को इक बार अधर से
फिर रंगने का मन करता है।
कुछ विशेष सा शेष हाशिए
पर पढ़ने का फन करता है...

बात के साधन कई आए
चित्र साथ में तक लाए,
लेकिन यादों की तसदीक
खत सा कोई ना भाए।

सड़क पारकर लाल डिब्बे तक
फिर जाने का मन बनता है।
जीभ घुमाकर चिपकाने का
एक बार फिर मन करता है.

40 राजश्री कॉलोनी, विनायक नगर,
उदयपुर-313001

डॉ. श्रीकृष्ण ''जुगनू''

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' का जन्म 2 अक्टूबर, 1964 को चित्तौड़गढ़ जिले के आकोला ग्राम में हुआ। श्री जुगनू इतिहास-पुरातत्व, स्थापत्य-वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, शिक्षा, धर्म, ज्योतिष, आयुर्वेद एवं संस्कृति विषयों काअत्यन्त अनुसंधान परक लेखन के लिए समर्पित अभी तक आपके द्वारा अनूदित-संपादित लगभग 100 ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं, जिनकी पृष्ठ संख्या 32000 से अधिक है। इस प्रकार डॉ. जुगनू ने देवभाषा के साथ-साथ राष्ट्र भाषा की महती सेवा की है।

-संपादक

1998 से निरंतर प्रकाशित
RNI NO. MPHIN/2017/73838

कला समय पत्रिका अब वेबसाइट पर उपलब्ध
www.kalasamaymagazine.com

ISSN 2581-446X
(वर्ष : 21+2) पूर्णांक-97,
वर्ष-2, अंक-4, फरवरी-मार्च 2019

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल द्वारा पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित

कला समय

कला, संस्कृति और विचार की द्वैमासिक पत्रिका

संरक्षक
नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
डॉ. महेन्द्र भानावत
पं. विजयशंकर मिश्र
श्यामसुंदर दुबे
पं. सुरेश तातेड़

परामर्श
लक्ष्मीनारायण पयोधि
ललित शर्मा
राग तेलंग
प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
डॉ. शशि सांखला
प्रो. सुधा अग्रवाल
डॉ. अरविंद सक्सेना
चन्द्रमोहन सक्सेना
प्रो. कमला कौशिक

सांस्कृतिक प्रतिनिधि
देवेन्द्र सक्सेना
9414291112
आस्था सक्सेना
चेतना श्रीवास

वेबसाइट प्रबंधन
मयंक अग्रवाल

रेखांकन : डॉ. रेखा भटनागर

संपादक
भँवरलाल श्रीवास
bhanwarlalshrivas@gmail.com
94256 78058

सह संपादक
डॉ. मधु भट्ट तैलंग

उप संपादक
राहुल श्रीवास

संपादक मंडल
रामेश्वर शर्मा 'रामू भैया'
साहित्य
हरीश श्रीवास
कला
संगीता सक्सेना
संस्कृति
नरिन्दर कौर
प्रबंध

कानूनी सलाहकार
जयंत कुमार मेढे (एडवोकेट)

सहयोग राशि

वार्षिक	**: 150 /-**	**(व्यक्तिगत)**
	: 175 /-	**(संस्थागत)**
द्वैवार्षिक	**: 300 /-**	**(व्यक्तिगत)**
	: 350 /-	**(संस्थागत)**
चार वर्ष	**: 500 /-**	**(व्यक्तिगत)**
	: 600 /-	**(संस्थागत)**
आजीवन	**: 5,000/-**	**(व्यक्तिगत)**
	: 6,000/-	**(संस्थागत)**

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाइन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा कला समय के नाम से उक्त पते पर भेजें)

संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग संपर्क -
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016
फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सुविधा : 'कला समय' का बैंक खाता विवरण
ओरियण्टल बैंक ऑफ कॉमर्स की शाखा **(IFSC : ORBC0100932)** में **KALA SAMAY** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में नगद राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हों। पत्रिका से सम्बन्धित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे।
सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक/अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा दृष्टि ऑफसेट, 36-37, प्रेस काम्पलेक्स, जोन नं-1, एम.पी. नगर, भोपाल से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक- भँवरलाल श्रीवास

इस बार

- संपादकीय / 5
  रंगमंच का सच
- आलेख / 6
  मालवा की चित्रांकन परम्परा / नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
- साक्षात्कार / 9
  युगल गायन प्रेम का सूचक है- जिसकी आज बहुत जरूरत है / पंडित विजयशंकर मिश्र
- आलेख / 12
  भारतीय शास्त्रीय संगीत तब और अब / पं. श्रीधर व्यास
- साक्षात्कार / 18
  रंगमंच संघर्ष का रास्ता है / भँवरलाल श्रीवास
- आलेख / 25
  कला समीक्षा का आधार / डॉ. सुशील त्रिवेदी
- संस्मरण / 28
  ऐसी ही मीठी यादों के सहारे कट रही है जिन्दगी / मुकेश कुंदन थॉमस
- विश्व कविता / 34
  माया एंजलो की कुछ कविताएँ, अनुवाद : मणि मोहन
  जंग बहादुर श्रीवास्तव 'बंधु' के गीत/ 35
  डॉ. महेन्द्र भानावत की कविता / 36
  राम मेश्राम की ग़ज़लें / 37
- कहानी / 38
  झलमला / पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी
  इंतज़ार / अभिलाषा श्रीवास्तव/ 39
  लघुकथा : बालश्रम बनाम बाल कलाकार / डॉ. तारुणी कारिया / 41
- आलेख / 42
  विश्व प्रसिद्ध किशनगढ़ चित्र शैली / डॉ. श्रीमती उर्मिला शर्मा
- शोध पत्र / 45
  सूफ़ी संगीतज्ञ अमीर खुसरों का भारतीय संगीत में योगदान / संगीता सक्सेना
- आलेख / 47
  आश्रम भजनावलि का सुनहरा इतिहास / माधवी नानल
- आलेख /50
  वर्तमान परिप्रेक्ष्य में लोक कलाओं की अस्तित्व बोध की चिन्ताएं / राधेलाल बिजघावने
- पुस्तक समीक्षा / 52
  काव्य कृति 'लमझना' पर विमर्श / लक्ष्मीकान्त जवणे
  लोककवि- ईसुरी-बुंदेली लोक साहित्य का आधार स्तंभ / राधेलाल बिजघावने / 55
- संस्था आयोजन/ 57
  'कला समय' संस्था का संस्कृति-पर्व 3
  शास्त्रीय संगीत समीक्षा: आरोही - 2 / अबीर-गुलाल वाला बिन्दास फागुनी गायन / 58
- स्मृति शेष/ 60
  शशिकान्त मुण्डी : मुखर शिल्पों के अंतर्मुखी शिल्पकार का मौन हो जाना / संदीप राशिनकर
- समवेत
  साहित्य मनीषी सम्मान समारोह सम्पन्न / सुप्रसिद्ध कथक नर्तक पंडित विजय शंकर का आकस्मिक निधन / इतिहास रचती निर्मिश ठाकर की नयी केरिकेचर प्रदर्शनी- महिलाओं पर केन्द्रित / म.प्र. की एकमात्र जल एकाग्र 'शिवम् पूर्णा' मासिकी पुरस्कृत / 'कामड़ संतों की लोकवाणियां' लोकार्पित / काकली संगीत समारोह में ग्वालियर घराने के तीन रंग / आपले वाचनालय में गूँजे स्त्री चेतना के स्पंदन और हुआ स्त्री शक्ति का अभिनन्दन / श्री मित्र कला संगम का सम्मान समारोह-2019 / 'जन्म से ही जीवित है पृथ्वी' का लोकार्पण / A2 अकादमी के द्वारा नाटक का मंचन
- कला समय : नवांकुर, नन्हें कलाकारों की दुनिया / 65
  यशि शर्मा, कौस्तुभ भाग्यवंत
- महिला प्रतिभाएँ वक्र रेखाओं में / 66
  निर्मिश ठाकर

डॉ. रेखा भटनागर

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

पं. श्रीधर व्यास

डॉ. सुशील त्रिवेदी

मुकेश कुंदन थॉमस

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स, भोपाल, 9981984888 | **आवरण चित्र** - डॉ. रेखा भटनागर | **अंतिम आवरण चित्र** - डॉ. रेखा भटनागर
छायाचित्र - मनीष सराठे, सुनील सेन | **रेखांकन** - डॉ. रेखा भटनागर | **सहयोग** - धन सिंह, लता श्रीवास

संपादकीय

रंगमंच का सच

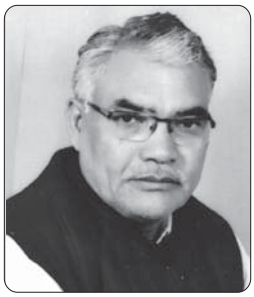

''जो साथ न मेरा दे पाए, उनसे कब सूनी हुई डगर
मैं भी न चलूँ यदि तो भी क्या, राही भर लेकिन राह अमर
जिस जिस से पथ पर स्नेह मिला, उस उस राही का धन्यवाद''
-डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन'

नाट्य लेखन से लेकर मंचन तक की लम्बी प्रक्रिया से रंगमंच को गुजरना होता है। इसमें लेखक जो नाटक को लिखता है, निर्देशक जो उसे नाट्य विधा में प्रस्तुत करता है। सेट डिजाइनर जो नाटक की तासीर को समझकर सेट का निर्माण करता है, प्रकाश , वेशभूषा, संगीत, नृत्य गीत, मंच सामग्री, रूप -सज्जाकार ऐसे अनेक किरदार हैं, जो नेपथ्य में रहकर नाटक को दर्शकों की पसंद और रुचि का बनाने में पूरी की पूरी टीम अपनी आत्मा को उतार कर नाटक के किरदार में पात्र अभिनय से अपने-अपने रोल को स्वरों के अनुरूप परकाया में प्रवेश करके उसी अभिनय भाव-भंगिमाओं के साथ दृश्य को जीवन्त बनाते हैं। सारा का सारा निर्णय अपनी लम्बी रंग साधना का रिजल्ट सुनने के लिये सारे अधिकार दर्शकों को देकर उनकी पसंद-नापसंद का और एक पात्र का भविष्य निर्देशक की मेहनत और लेखक की कलम की ताकत का निर्णायक रंगमंच का भविष्य सिर्फ दर्शक होता है। वह इसलिए कि रंगमंच ही ऐसी विधा है जो नाटक मंचन और कलाकार का जीवंत अभिनय का सही निर्णायक दर्शक होता है, वहीं उसके किरदार और नाटक को जीवन प्रदान करता है।

'कला समय' संस्थान ने भी एक प्रयास बतौर 16 फरवरी 2019 को रवीन्द्र भवन सभागार में नाटक 'जमोला का लमझना' काव्य नाटक का मंचन किया जिसे दर्शकों ने अपनी तालियों और हाउस फुल उपस्थिति से इसके प्रथम शो और प्रथम प्रयास के दर्शकों ने अपनी मोहर लगाकर संस्था कला समय के प्रयास को सार्थकता प्रदान की। इस प्रस्तुति के पीछे जो संघर्ष है, मैं यहाँ पर आपसे स्पष्ट करना आवश्यक समझता हूँ।

लेखक लक्ष्मीनारायण पयोधि की काव्य कृति लमझना को उन्होंने नाट्य रूपांतर कर नाटक 'जमोला का लमझना' तैयार किया। शहर के वरिष्ठ रंगकर्मी आलोक चटर्जी जिन्होंने अभी तक लगभग सवा सौ से अधिक नाटकों का मंचन किया, इस नाटक को करने की अपनी सहमति देकर संस्था कला समय का मान बढ़ाया। पयोधि जिनकी अभी तक 38कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्होंने कला समय के मंच पर मंचित कृति सहित पांच पुस्तकों का एक साथ लोकार्पण कर संस्था को गौरवान्वित किया। इसी अवसर पर चित्रकला पर एकाग्र 'कला समय' के नवीन अंक का भी लोकार्पण हुआ। नाटक 'जमोला का लमझना' की कहानी कुछ इस तरह है कि गोंड जनजातिय में जिनके लड़के नहीं होते हैं सिर्फ लड़की होती है, उसके लिये घर जमाई लाया जाता है। उसे परिवीक्षा पर रखा जाता है और पसंद नहीं आने पर उसे वापस भेज दिया जाता है। यह उनके रिश्ते में बुआ का भी बेटा होता है। इस (नाटक) में भी कुछ इसी तरह होता है और उसे वापस कर दिया जाता है। फिर जमोला जिसके लिये लमझना लाया जाता है, वह आधुनिक वयस्क स्त्री के सम्मान को हवाला देकर पिता से कर उसे वापस बुलाने पर मजबूर करती है। परिवार को नारी शक्ति और पसंद पर झुकना पड़ता है। इस नाटक की एक माह रिहर्सल चली। इसमें 14 कलाकार डिंडोरी, मण्डला, छिंदवाड़ा से बुलाये गये, जिससे इस नाटक में जीवन्तता लाने का प्रयास किया गया। इसके पीछे वहाँ की भाषा, वेशभूषा, आभूषण, संगीत, नृत्य को जस का तस प्रस्तुत करने का पूरा-पूरा प्रयास संस्था के साथ निदेशक ने बखूबी मंचन कर दर्शकों को पूरे समय बांधकर रखा। संस्कृति पर्व-3 के अंतर्गत यह संस्था का पहला प्रयास है। इसमें मनोहर काजल की प्रदर्शनी, जिसने लगभग 50 चित्र और आनंद सिंह श्याम वरिष्ठ गोंड कलाकार ने भी अपने चित्रों से इस प्रदर्शनी को एक जनजातीय परम्परा से जोड़ने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। सेमिनार में धमेन्द्र पारे, बसन्त निर्गुणे, महेश शांडिल्य, लक्ष्मीकान्त जवणे सहित सेमिनार की अध्यक्षता डॉ. श्याम सुंदर दुबे ने की। इस प्रतिष्ठापूर्ण समारोह की शोभा बढ़ाने डॉ. कपिल तिवारी, नर्मदा प्रसाद उपाध्याय सहित डॉ. श्याम सुन्दर दुबे ने संयुक्त रूप से संस्था 'कला समय' द्वारा स्थापित सम्मानों को इस वर्ष का 'कला समय शब्द शिखर सम्मान' दीर्घ साहित्य साधना हेतु लक्ष्मीनारायण पयोधि और 'कला समय रंग शिखर सम्मान' दीर्घ रंग साधना हेतु आलोक चटर्जी, को दिया गया। आरोही-2 में कुमार गंधर्व की पुत्री वरिष्ठ शास्त्रीय गायिका कलापिनी कोमकली का शास्त्रीय गायन और अमन मलक का हारमोनियम वादन से 18मार्च 2019 को रवीन्द्र भवन के संगीत प्रेमी रसिकों ने अपनी उपस्थिति से संस्था का गौरव बढ़ाया।

आप सभी को पुन: धन्यवाद के साथ संस्था कला समय पत्रिका कला समय से आपका संबंध, मार्गदर्शन हमें इसी तरह आगे भी मिलता रहेगा।

होली पर्व की शुभकामनाएँ...

- भँवरलाल श्रीवास

आलेख

मालवा की चित्रांकन परम्परा

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

नर्मदा मालवा अंचल की प्राणरेखा है। यह वर्तमान मालवा और निमाड़ तथा प्राचीन अवन्तिका और अनूप जनपद को मोटे अर्थों में विभाजित करती है। मालवा का इतिहास महाजनपद की स्थापना के पूर्व से ही मिलता है तथा यहां हीनयान का बौद्ध। प्रभाव विशेष रूप से ईसा पूर्व की शताब्दियों में दिखाई देता है। ईसा पूर्व छटवीं शताब्दी से ही विशेष रूप से चण्डप्रद्योत के समय से उज्जयिनी का इतिहास मिलता है। फिर गुप्तकाल तक आते-आते मालवा का कलात्मक वैभव अपने उत्कर्ष को स्पर्श करता है।

बाघ की गुफाऐं इन अर्थों में बड़ी महत्वपूर्ण है। गुप्तकाल की ये गुफाऐं अजन्ता की गुफाओं से साम्य रखती है तथा इन पर बने भित्तिचित्र अजन्ता शैली के बौद्ध प्रभाव वाले चित्रों से साम्य रखते हैं, विशेष रूप से मुंह ढांपकर रोती हुई नारी तथा एक नृत्यांगना। मालवा शैली पर अपभृंश का प्रभाव साफ दिखाई देता है।

मालवा शैली के संबंध में यह प्रश्न अभी भी विवाद का विषय बना हुआ है कि मालवा कलम ने मेवाड़ कलम को प्रभावित किया अथवा मेवाड़ कलम ने मालवा कलम पर प्रभाव डाला। माण्डू और उसके आसपास के इलाके में 10वीं शताब्दी से ही ऐसे व्यक्तियों के उल्लेख मिलने लगते हैं, विशेष रूप से श्वेताम्बर जैन मतावलम्बियों के, जो समृद्ध होने के साथ-साथ कलारुचि सम्पन्न थे। इसका एक सुन्दर उदाहरण गदाशाह है, जिसने माण्डू में गयास खिलजी के समय (1469-1501 ई.) अपना प्रभुत्व दिखाया। उसी के समय माण्डू का वह सुप्रसिद्ध कल्पसूत्र बनाया गया जो संभवत: गत्ते पर बना पहला कल्पसूत्र है। गयासखिलजी का वह चित्र जो नियामतनामा में बना हुआ है अत्यन्त प्रसिद्ध है जिसमें वह एक बगीचे में महिलाओं से घिरा हुआ है, जो विभिन्न प्रकार के व्यंजन परोस रही है। इनमें एक मालवी परिधान पहने महिला स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। अमरूशतक, कल्पसूत्र और नियामतनामा के चित्र माण्डू में बने तथा यह ईरान से आई हुई शिराज शैली का पल्लवन हुआ, जिसकी विशेषता सुनहले रंगों का प्रयोग थी। गयासखिलजी के समय एक समन्वित कलम जो ईरान और स्थानीय कलम के मेल से जन्मी थी, विकसित हुई। उसके बाद नासिरशाह के समय में बुखारा की उपशैली का प्रभाव माण्डू कलम पर पड़ा। 1503 ई. में यहां शेख सादिका बोस्तां चित्रित किया गया। गदाशाह की दुकान में ऐसा प्रतीत होता है कि अनेकों चित्र रहे होंगे किन्तु अभी केवल दो चित्र दिखई देते हैं, जिनमें से एक का अभिज्ञान मेदिनी राय, जो एक समय माण्डू का सेनापति रहा तथा बाद में चन्देरी चला गया का है। दूसरा चित्र संभवत: उसकी रानी का है, जिसकी अभी केवल एक आंख ही दिखाई देती है।

जहांगीर ने, जो अपने समय चित्रकला का अप्रतिम पोषक था, माण्डू में अनेकों माह बिताये। यह संदर्भ भी मिलता है कि वह अपने साथ अपने प्रसिद्ध चित्रकार गोवर्धन को लाया था, जिसने जहांगीर और नूरजहां की अनेकों शबीहें बनाईं तथा वहां की प्राकृतिक सुषमा को उरेहा। माण्डू के पास कागदीपुरा नामक एक गांव है, जिसके संबंध में यह प्रचलित हैं कि वहां कागज बनाया जाता था, जिस पर चित्र उरेहे गए होंगे।

माण्डू की चित्रांकन परम्परा की अपनी ऐसी विशेषताऐं हैं, जिन्हें आसानी के साथ पहचाना जा सकता है। राय आनन्द कृष्ण ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'द मालवा पेंटिंग' में विस्तार से मालवा शैली के संबंध में प्रकाश डाला है तथा उस क्रॉस फर्टिलाइजेशन थ्योरी के बारे में भी प्रकाश डाला है, जिसके मुताबिक देहली से जौनपुर होते हुए अपभ्रंश कलम माण्डू आई और मेवाड़ से आने वाले प्रभवों के संयुक्त हो गई। घुमड़ते हुए बादल, भारतीय परिधान व अलंकरण तथा स्थानीय वनस्पति का अंकन प्रारंभिक मालवा कलम की विशेषताऐं हैं। इस पर सल्तनत कलम का प्रभाव

पड़ा। इस प्रकार मालवा शैली सल्तनत, चौरपंचाशिका और अपभ्रंश कलम से गहरे प्रभावित है।

मालवा कलम के संबंध में राय आनन्द कृष्ण जी का अध्ययन मुख्यत: भारत कला भवन में रखे मालवा शैली के चित्रों पर केन्द्रित है। इनमें विशेष रूप से राग-रागनियों व रामायण के चित्र हैं। मालवा कलम पर पालम शैली का भी प्रभाव दिखाई देता है और राय आनन्द कृष्ण यह मानते हैं कि मृगावत के जो चित्र हैं, उस शैली का प्रभाव आरंभिक मालवा कलम पर पड़ा है। आरंभिक मालवा कलम में गीत गोविन्द के चित्र बनाए गए। आरंभिक मालवा कलम के संबंध में उनका यह निष्कर्ष है कि अपभ्रंश की ही एक पृथक शैली के रूप में 16वीं शताब्दी में मालवा कलम का जन्म हुआ तथा मालवा कलम पर उस कुलहदार शैली का विशेष प्रभाव पड़ा, जो देहली के आसपास सल्तनतकाल से फूल-फल रही थी।

नरसिंहगढ़ में, जिसे नुसरतगढ़ भी कहा है, एक सुन्दर शैली का माधोदास व उसके शिष्यों के द्वारा प्रादुर्भाव किया गया। इस शैली में रागमाला के अनेकों चित्र बने। इसका जन्म 1680 से हुआ। इस शैली के चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में है। रायकृष्णदास के अनुसार बुन्देलखण्ड शैली पर मालवा कलम का प्रभाव पड़ा। मालवा शैली तथा बुन्देलखण्ड शैली अपने आप में पृथक है तथा हाल ही में जो नवीनतम शोध मालवा कलम पर जोसफ एम.आई ।।। में की है, उसका यह निष्कर्ष भ्रामक है कि एक ऐसा चित्र जिस पर हीरादे लिखा हुआ है, यह मालवा कलम का है। रायकृष्णदासजी ने पुरुष व महिला आकृतियों के संबंध में जो मालवा शैली के चित्रों में उरेही गई है, प्रकाश डाला है। उनका यह भी मानना है कि ओरछा के अकबर के समकालीन राजा मधुकर शाह के समय जो चित्र बने और उनमें विशेष रूप से जो नाक का अंकन हुआ, उसका प्रभाव मालवा कलम पर पड़ा है। राय आनन्द कृष्ण का यह मानना है कि मान मन्दिर ग्वालियर की भित्तियों पर बने जो रागमाला के चित्र हैं, उनका भी प्रभाव आरंभिक चित्रों पर है।

मालवा कलम का नैरन्तर्य बना रहा तथा राग-रागनियों के चित्रों के अलावा रामायण के चित्र भी बने। सबसे पुराने मालवा कलम के रामायण के चित्र 1616ई. में बनाए गए जो वर्तमान में विक्टोरिया एण्ड अल्बर्ट म्यूजियम लंदन में है। रागमाला के वे चित्र जो खजांची संग्रह तथा भारत कला भवन व गोपीकृष्ण कनोजिया संग्रह में हैं, वे भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। उनका यह भी मानना है कि प्रतापगढ़ तथा बून्दी के चित्रों पर मालवा कलम का प्रभाव पड़ा है। उनके दृष्किोण से रागमाला के चित्रों के अलावा सर्वाधिक महत्वपूर्ण मालवा कलम के चित्र 1634 ई. में बनी रसिकप्रिया के हैं।

राय आनन्द कृष्ण के अनुसार 1650 ई. के पश्चात् मालवा कलम अनेकों उपशैलियों में विभाजित हुई। उन्होंने ए व बी श्रेणी के अनुसार विभाजन किया है। ए श्रेणी के चित्रों में वे चित्र हैं, जो पारंपरिक रूप से बनाए गए तथा बी श्रेणी के अन्तर्गत मुख्यत:

अमरूशतक के चित्र आते हैं, जो वर्तमान में छत्रपति शिवाजी संग्रहालय (प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम) मुम्बई में है। इसी श्रेणी में वे माधोदास के सन् 1680 ई. में बनाए गए उन रागमाला चित्रों को भी शामिल करते हैं, जो राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में हैं।

मालवा कलम के चित्रों को पूर्वी तथा पश्चिमी मालवा कलम के रूप में चिन्हित मोटे तौर पर किया जा सकता है तथा हिमाचल प्रदेश व राजस्थान की तरह उनका स्थानवार वर्गीकरण भी उनके लक्षणों के आधार पर किया जा सकता है।

18वीं शताब्दी के बाद मालवा की चित्रांकन परम्परा पर मराठा प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है, विषय भी प्राय: परम्परागत नहीं रह गए हैं। विशेषता यह है कि यदि नाथद्वारा कलम से प्रभावित चित्र बनाए गए तो उन पर मराठा प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। 18वीं और 19वीं शताब्दी के बीच मालवा में दो परम्पराऐं समान्तर रूप से फली-फूली। एक परम्परा, राज्याश्रय में बनाए गए चित्रों की रही तथा दूसरी उस शैली की जो लोक के बीच से जन्मी। इस कलम पर विदर्भ, खानदेश तथा राजस्थानी कलमों का विशेष रूप से मेवाड़ और नाथद्वारा कलमों का प्रभाव था।

पूर्व में माण्डू तथा पश्चिम में राघोगढ़ दो ऐसे स्थान रहे जहां

चित्रांकन की परम्परा ने अपना अप्रतिम विकास किया। आरंभिक मालवा शैली के जो चित्र माण्डू में बने, उन पर श्वेताम्बर जैन मतावलम्बियों का प्रभाव रहा जबकि चन्देरी में जो चित्र बने, उन पर दिगम्बर मतावलम्बियों का प्रभाव रहा। नरसिंहगढ़ शैली के चित्रों की परम्परा जो वास्तव में माधोदास और उसके शिष्यों के द्वारा प्रचलित की गई थी वह समाप्त नहीं हुई। अभी भी कंवरानी देवी तथा चम्पावती देवी के मंदिरों की भित्तियों पर इस शैली के कुछ चित्र भग्नावस्था में बने दिखाई देते हैं। 19वीं शताब्दी में देहली से आने वाले तथा भोपाल और सीहोर की ओर से आने वाले मुस्लिम चित्रकारों ने स्थानीय लोकशैली में अपनी कलम को मिलाकर बड़े रंजक चित्र बनाए जो साखा श्यामजी की दीवारों पर मौजूद हैं। इतना संविलियन होने के बावजूद भी बुन्देलखण्ड के चित्रों और उससे सटे राघोगढ़ कलम के चित्रों की विशेषताओं में स्पष्ट रूप से विभेद किया जा सकता है।

सेन्ट्रल इण्डियन पेंटिंग ने मालवा कलम को भी समाहित कर लिया गया है, जबकि यह अनुचित है। रूपमती और बाजबहादुर की कथा का चित्रण मालवा कलम में बहुतायत से ठीक उसी तरह हुआ जैसे ढोलामारू की कथा का राजस्थानी शैलियों में तथा नल दमयन्ती की कथा का चित्रांकन पहाड़ी शैली में।

मालवा शैली के चित्रों में लाल, हरे, नीले, गुलाबी तथा पीले रंगों का बहुतायत से उपयोग किया गया है तथा विशेष रूप से इन चित्रों में अंकित कर स्थापत्य दर्शनीय है जो मालवा के अंचल में विकसित स्थापत्य का प्रतिनिधित्व करता है।

श्री मित्र कला संगम का सम्मान समारोह-2019

संस्कृति, साहित्यिक एवं जनकल्याण संस्था श्री मित्र कला संगम द्वारा हिन्दी भवन महादेवी वर्मा कक्ष में तीसरा डॉ. हुकुमपाल 'विकल' स्मृति सम्मान समारोह 2019 में शहर के के वरिष्ठ गीतकार शिवकुमार अर्चन और युवा रंगकर्मी, निर्देशक ज्योति दुबे को सम्मानित किया गया। समारोह के मुख्य अतिथि संतोष चौबे, रमाकांत श्रीवास्तव, मुकेश वर्मा, नजीर कुरैशी विशेष रूप से उपस्थित थे।

'जन्म से ही जीवित है पृथ्वी' का लोकार्पण

स्पंदन संस्था द्वारा स्वराज भवन सभागार में प्रेमशंकर शुक्ल के नवीन कविता संग्रह 'जन्म से ही जीवित है पृथ्वी' का लोकार्पण सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर श्री शुक्ल ने अपने संग्रह से चुनिंदा रचनाओं का पाठ किया। विचार गोष्ठी के प्रमुख अथिति वक्ता श्री राधा वल्लभ त्रिपाठी, श्री संतोष चौबे, श्री गीत चतुर्वेदी, शम्पा शाह, मणि मोहन और प्रशांत बिस्सा ने हिस्सा लिया तथा अपने-अपने विचार व्यक्त किए। कार्यक्रम का संचालन संस्था संयोजक उर्मिला शिरीष ने किया।

साक्षात्कार

पद्मभूषण पं. राजन मिश्र और पद्मभूषण पं. साजन मिश्र से
पंडित विजयशंकर मिश्र की अंतरंग बातचीत...

युगल गायन प्रेम का सूचक है- जिसकी आज बहुत जरूरत है

पंडित विजयशंकर मिश्र

बनारस घराने के विश्वविख्यात प्रतिनिधि गायक द्वय पं. राजन मिश्र एवं पं. साजन मिश्र को सुनना हर बार सुखद साबित होता है, और सुनने की इस प्रक्रिया में केवल उनका मनोमुग्धकारी संगीत ही नहीं, उनकी बातें भी हैं। जब किसी अनछुए अथवा विवादास्पद मुद्दे पर ये अपना पक्ष रखते हैं, तो यूं महसूस होता है जैसे वे किसी अंक्षोप राग के एक-एक स्वर समूहों को खोलते हुए उसका क्रमबद्ध विकास कर रहे हैं। संस्कृति सम्मान, संगीत नायक, संगीत रत्न, संगीत भूषण, काशी गौरव, पं. कुमार गन्धर्व सम्मान, उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार और केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी सम्मानों सहित अनेकानेक अन्य पुरस्कारों से विभूषित पं. राजन मिश्र एवं पं. साजन मिश्र मात्र लब्धप्रतिष्ठित गायक ही नहीं हैं अपितु अपने गुरुकुल के माध्यम से नई और पुरानी पीढ़ी के कलाकार की हर स्तर पर सम्भव सहायता भी कर रहे हैं। साथ ही वेबसाइट बनारस घराना डॉट कॉम के माध्यम से बनारस के समस्त सांगीतिक विधाओं की जानकारियां भी जिज्ञासुओं को उपलब्ध करा रहे हैं। राजनजी के दोनों युवा पुत्र रितेश और रजनीश मिश्र संगीत के राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय मंचों पर सक्रिय हैं, तो साजन जी के पुत्र स्वरांश संगीत संरचना के क्षेत्र में सक्रिय हैं। पद्मभूषण से अलंकृत दोनों भाइयों से पिछले दिनों एक सार्थक मुलाकात हुई और फिर कुछ सार्थक बातें भी...

● **पंडितजी, आप दोनों भाई युगल गायन करते हैं। इसके विषय में कुछ बतायें।**

– 'मुझे' लगता है कि संगीत में युगल गायन की परम्परा बहुत प्राचीन है। बनारस में पं. प्रसिद्धू-मनोहरजी और पं. शिवा-पशुपतिजी से लेकर पं. अमरनाथ-पशुपतिनाथ मिश्र के साथ-साथ हम दोनों भाई भी युगल गायन कर रहे हैं। डागर परम्परा में भी डागर बंधु युगल रूप में ध्रुवपद का गायन करते रहे हैं, हालांकि यह परम्परा अब क्षीण होती जा रही है। लेकिन गुंदेचा बंधु तो गा ही रहे हैं एक साथ ध्रुवपद। हिंदुस्तान में उस्ताद नियाज़ अहमद और फैयाज़ अहमद ने युगल गायन किया तो पाकिस्तान में उस्ताद नजाकत-सलामत ने। हमारी परंपरा में भी रितेश-रजनीश (पं. राजनजी के सुपुत्र) युगल गायन कर रहे हैं। कई और युवा भी गा रहे हैं जैसे दिवाकर-प्रभाकर कश्यप और मलिक बंधु आदि। इससे लगता है कि इस परम्परा, इस शैली को लोग पसंद कर रहे हैं।

● **युगल गायन और जुगलबंदी में क्या अंतर है। इसे जुगलबंदी ही क्यों न कहा जाये ?**

– वार्ता में हस्तक्षेप करते हुए पद्भूषण पं. साजन मिश्र कहते हैं- 'हमें युगल गायन और जुगलबंदी के अंतर को समझने की जरूरत है। युगल गायन में दो कलाकार एक साथ मिलकर एक भाव, एक रस की निष्पत्ति करते हैं। जबकि, जुगलबंदी में एक प्रकार की प्रतिद्वन्द्विता की भावना होती है। एक-दूसरे से आगे निकलने की होड़ होती है। मैं स्पष्ट कर दूं कि हम लोग जुगलबंदी नहीं, युगल गायन ही करते हैं। मैं अपने आदरणीय बड़े भाई पं. राजन मिश्रजी के साथ गायन करता हूं, इसलिए हम दोनों एक दूसरे की भावनाओं का सम्मान करते हुए अपने गायन को पूर्णता-सम्पूर्णता की ओर मोड़ते हैं। युगल गायन प्रेम का सूचक, परिचायक है। मुझे लगता है कि जब सितार और सरोद की जुगलबंदी लोकप्रिय होने लगी तब गायन में भी इसका प्रयोग होने लगा। वरना हम इसे युगल गायन कहना ही पसंद करते हैं। यही उचित भी है, और समय की मांग भी।'

● **आज युगल गायन या जुगलबंदी की जो स्थिति है, उस पर आप लोगों के क्या विचार हैं ?**

– पूछने पर राजनजी कहते हैं, 'इन दोनों की ही आज प्रस्तुति हो रही है। कहीं अच्छा तालमेल भी देखने को मिल रहा है जिसे युग गायन कहा जा सकता है तो कहीं होड़ और प्रतिद्वन्द्विता भी दिख रही है- जिसे जुगलबंदी कहना ही उचित होगा।'

- **दो भिन्न संगीतकारों के द्वारा एक ही राग, एक ही रचना, एक ही ताल, एक ही लय का एक ही साथ गायन कितना कठिन होता है ?**

– का उत्तर साजनजी देते हैं– 'ऊपर से देखने पर यह जितना कठिन लगता है, वास्तव में उतना कठिन होता नहीं है। क्योंकि–जो–दो लोग साथ में मिलकर गायन करते हैं तो वह पल–परेशानी तनाव या कठिनाई का नहीं, बल्कि आनंद का होता है। हम दोनों सहोदर भाई हैं, हमारी शिक्षा–दीक्षा साथ हुई है, हमारे विचार आपस में मिलते हैं। इसलिये हमें परेशानी नहीं होती है।'

बातों की कड़ी से कड़ी को जोड़ते हुए पं. राजनजी कहते हैं– लेकिन, कई बार ऐसा भी होता है कि दो भिन्न विधाओं के ऐसे संगीतकारों को भी एक साथ बैठाया जाता है– जो अलग–अलग परिवेश से आते हैं, अलग–अलग मानसिकता के होते हैं। जैसे भारतीय और पाश्चात्य संगीतकारों की जुगलबंदी, भारतीय और पाश्चात्य वाद्यों या संगीत की जुगलबंदी, गायन और वादन की जुगलबंदी या दो भिन्न प्रकार के वाद्यों की जुगलबंदी उत्तर भारतीय और दक्षिण भारतीय गायन–वादन आदि की जुगलबंदी– तो, इनमें आपसी तालमेल और वैचारिक सहमति का होना बहुत जरूरी होता है। तभी ये कलायें अपने उद्देश्य में सफल होंगी। इनका उद्देश्य आत्मिक, मानसिक और बौद्धिक आनंद होता है– श्रोताओं और दर्शकों को अपनी कला या विद्वता से आक्रांत या आतंकित करना नहीं।

- **क्या कारण है कि संगीत (गायन) के इतिहास में बनारस घराने का प्राय: कोई उल्लेख नहीं मिलता है ?जबकि यहां एक–से बढ़कर एक महान् गायक कलाकार हो गए हैं। दूसरी ओर, कई घरानों का भी वहां प्रमुखता से उल्लेख है जिसमें सिर्फ एक–दो ही गायक हुए हैं ?तालमेल अथवा संवाद की कमी आप लोग कहां महसूस करते हैं ?**

– पं. राजनजी इस चुभते हुए प्रश्न का उत्तर चुभते हुए शब्दों में ही देते हैं– आपके इस प्रश्न का सही उत्तर तो वे इतिहास लेखक ही दे सकते हैं जिन्होंने संगीत का इतिहास लिखते समय बनारस घराने को अनदेखा किया हैं। मैं आपको यह भी नहीं बता सकता कि ऐसा उन लोगों ने द्वेषवश जानबूझकर किया है या अज्ञानतावश। लेकिन मैं आपको यह जरूर बताना चाहता हूं कि बनारस में उच्चकोटि के अनेक कलाकार हुए हैं। यहां के प्रसिद्ध गायक और वीणावादक पं. लक्ष्मीदासजी से सीखने के लिए पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर भी गए थे लेकिन उन्होंने पलुस्करजी को इसलिए अपना शिष्य नहीं बनाया कि उनकी गायकी भिन्न प्रकार की होने के कारण पलुस्करजी के वश की नहीं थी क्योंकि वह नेत्रहीन भी थे। आज खयाल गायन का सर्वाधिक प्राचीन घराना ग्वालियर को माना जाता है लेकिन अगर आप इतिहास की गहराई में जाकर देखेंगे तो पायें गे कि ग्वालियर में संगीत बनारस से ही पहुंचा है। बनारस वह स्थान है जहां दूसरे घरानों के स्थापित कलाकारों ने आकर शीश झुकाया, गण्डा बंधवाया, केसरबाई केरकर और गौहरजान जैसी गायिकाओं ने सांगीतिक प्रतिष्ठा पाने के बाद बनारस घराने की शिष्यता स्वीकारी। क्या अकारण ही ?

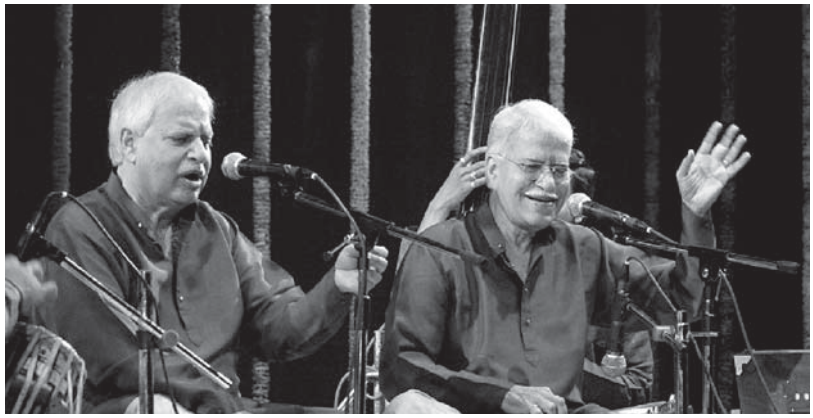

साजनजी बात को कुछ ऐसे आगे बढ़ाते हैं जैसे स्थाई से अंतरे पर जा रहे हों– विजय भाई ! इतिहास का गलत लेखन अक्षम्य अपराध हैं। प्राचीन ग्रंथों, शास्त्रों, पुराणों, आदि में बनारस को कला–संस्कृति की राजधानी लिखा गया हैं। यहां बुद्ध, शंकराचार्य, कबीर, तुलसी, और गालिब की कर्मभूमि रहीं हैं। यहां कलाओं की त्रिवेणी बहती हैं। गायन, वादन और नृत्य की समृद्ध परंपरा यहां रही हैं। ध्रुवपद, धमार, खयाल, ठुमरी, टप्पा आदि की गायकी, वीणा, सितार, सारंगी और तबले– पखावज का वादन और नृत्य की अविरल धारा यहां सदियों से प्रवाहित होती रही हैं। ऐसे में जि लोगों ने इस समृद्ध परंपरा का उल्लेख नहीं किया उन्होंने अपने लेखन को ही प्रश्न चिन्हों के कटघरे में खड़ा किया है।

- **बनारस घराने के गायन की मूल विशेषताएं क्या हैं ?**

बनारस घराने के गायन में सुंदर और अर्थपूर्ण साहित्य पर विशेष बल दिया जाता है। उच्चकोटि की साहित्यिक रचनाओं का यहां गायन होता है। चूंकि पद उच्चस्तरीय होते हैं इसलिए उनके उच्चारण पर भी हम विशेष ध्यान देते हैं। यहां की दूसरी विशेषता है स्वर और लय का मणिकांचन संयोग। ये रचनाएं तीनताल, एकताल और झपताल जैसे प्रचलित तालों के अलावा आड़ाचौताल, पंचम सवारी, लक्ष्मीताल और अष्टमंगल आदि जैसे तालों में भी निबद्ध होती हैं। चूंकि बनारस घराने में ध्रुवपद, खयाल, ठुमरी, कजरी, चैती और भजन आदि के साथ–साथ संस्कृत के श्लोक आदि भी गाए जाते हैं, अत: यहां के गायन में विविधता भी है.... स्तरीयता भी.... और रंजकता भी।

● **'एक समय था जब आप दोनों भाई ठुमरी नहीं गाते थे। लेकिन, अब लगातार ठुमरी महोत्सवों की शान बढ़ा रहे हैं। विचारों में यह तब्दीली क्यों आई ?'**

– के जवाब में साजनजी के अधरों पर तैर उठती है वही चिर परिचित मुस्कान, फिर वे गंभीर हो जाते हैं और कहते हैं– विजय भाई। आपका यह प्रश्न भी पहले प्रश्न से ही जुड़ा हुआ है। आज से लगभग 50 साल पहले जब हम दोनों भाईयों ने गायन के क्षेत्र में उतरने का निर्णय लिया, तब लोगों के मन में यही बात थी कि बनारस में तो ठुमरी वगैरह गाई जाती है, तो ये भी ठुमरी ही गायेंगे। जबकि, हमारे पास चारों पट की गायकी थी। अत: हम लोगों ने तय किया कि जब तक हम यह नहीं सिद्ध कर देंगे कि बनारस में खयाल गायन की भी समृद्ध परंपरा है, तब तक ठुमरी नहीं गायेंगे और अब पूरी दुनिया जब बनारस की खयाल गायकी को नमन कर रही है, तब हम खयाल के साथ–साथ ठुमरी भी गाने लगे हैं। और अब दुनिया यह मान रही है कि बनारस के गायक कुछ भी गा सकते हैं। यहां यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि हम हर कार्यक्रम में ठुमरी नहीं गाते हैं। ठुमरी का गायन सिर्फ ठुमरी महोत्सवों और ठुमरी पर केंद्रित कार्यक्रमों में ही करते हैं। एक और बात बताना भी यहां आवश्यक लग रहा है कि कुछ ऐसे कलाकार जो ठुमरी गायन से पूरी तरह परिचित नहीं हैं, वे इसे छोटी गायकी मानते हैं। जबकि ठुमरी का गायन भी बहुत कठिन होता है। इसमें विभिन्न तरह की भावनायें एक साथ तरंगित होती हैं। इसमें दिल और दिमाग दोनों का उपयोग सूझबूझ के साथ करना पड़ता है।

● **अपने परिवार और परंपरा के विषय में भी कुछ बतायें।**

– के उत्तर में राजनजी कहते हैं– 'हमारे परिवार में संगीत लगभग तीन–साढ़े तीन सौ साल से है। मेरे पिता पं. हनुमान मिश्र और चाचा पं. गोपाल मिश्र अपने समय के शीर्षस्थ सारंगी वादक थे। उनके पिता पं. सुर सहाय मिश्र भी प्रसिद्ध, सारंगी वादक थे। पं. सुर सहाय मिश्र के पिता पं. गणेश मिश्रा और पितामह पं. रामबख्श मिश्र भी महान सारंगी वादक थे।'

● **सारंगी की इतनी समृद्ध परंपरा से संबद्ध होते हुए भी आप लोगों ने कंठ संगीत को क्यों अपनाया ?**

– प्रश्न का जवाब पं. राजन मिश्र ने यह कहकर दिया कि– 'इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। और, ऐसा करने वाले हम पहले संगीतकार भी नहीं हैं। उ. अमीर खां और उ. बड़े गुलाम अली खां जैसे गायक भी सारंगी वादकों की परंपरा से ही आये थे।'

वार्ता की डोर अपने हाथों में लेते हुए साजन जी कहते हैं– मुझे तो सारंगी वादक बनाने की ही योजना थी पिताजी की। भैया को गाना सिखाया जा रहा था और मुझे सारंगी। लेकिन, चूंकि अच्छा सारंगी बजाने के लिये गायन की तालीम बहुत जरूरी होती है, इसलिये मेरी गायन की शिक्षा भी चल रही थी। लेकिन मेरी दिलचस्पी गायन में अधिक थी। यह देखकर मेरे चाचा जी पं. गोपाल मिश्र ने मेरे पिता पं. हनुमान मिश्र को सुझाव दिया कि क्यों न इन दोनों को गायन के क्षेत्र में ही डाला जाये। आवाज भी अच्छी है, और रुचि भी है। और, इस तरह हम दोनों भाइयों ने युगल रूप में गाना शुरु किया।

● **पं. राजनजी के दोनों सुपुत्र रितेश और रजनीश मिश्र युगल गायक के रूप में प्रसिद्धी और लोकप्रियता के मार्ग पर अग्रसर हैं। लेकिन साजनजी के सुपुत्र स्वरांश क्या कर रहे हैं ?**

– उत्तर साजनजी ही देते हैं– 'वे भी अपना पैर जमाने की कोशिश कर रहे हैं, लेकिन अलग क्षेत्र में। स्वरांश अच्छे गीतकार हैं, संगीत संरचनायें भी अच्छी तैयार कर रहे हैं और गाना तो खून में ही है। वे इस दिशा में अच्छा प्रयास कर रहे हैं। बस, आप लोगों का आशीर्वाद और सहयोग चाहिये। बड़े–बुजुर्गों और गुरुओं की कृपा चाहिये। उनमें प्रतिभा है, वे मेहनती हैं, संघर्ष कर रहे हैं, और मुझे पूरा विश्वास है कि वे स्वयं को जल्द ही स्थापित कर लेंगे। उनका भविष्य उज्ज्वल है।'

हमारी भी शुभकामनायें उनके साथ हैं और निश्चित ही वे स्वयं को सुयोग्य पिता की सुयोग्य संतन के रूप में स्वयं को स्थापित करेंगे।

'शंकरा' 705–डी/21 सी, वार्ड नं. 3, महरौली, नई दिल्ली–110020
दूरभष – 09810517945, ई–मेल : anhad.sam@gmail.com

आलेख

भारतीय शास्त्रीय संगीत तब और अब

पं. श्रीधर व्यास
(नृत्य पुरोधा)

संगीत की सूक्ष्मता का आधार तो मानसिकता है, परन्तु इतिहास का स्वरूप मानसिक नहीं है। भारतीय संगीत का इतिहास सूक्ष्माति सूक्ष्म घटनाओं का निरपेक्ष परिचय है अनेक विद्वानों के मतानुसार भारतीय संगीत के पूर्ण इतिहास की रचना संभव ही नहीं, क्योंकियह अत्यंत प्राचीन और असंख्य पांडुलिपियों में यत्र-तत्र अप्रकाशित पड़ा है। सर्वप्रथम इन पांडुलिपियों को सार्थक रूप देना ही कठिन है और फिर इनका संकलन भी।

परन्तु विद्वानों द्वारा दिये गये दृष्टिकोण और औचित्यपूर्ण प्रकाशनों के आधार पर इन रचना को प्रकाशित करनेकी कोशिश की गयी है। मेरे मतानुसार भारतीय संगीत के इतिहास में स्थूल दृष्टि से तीन 'काल' हो सकते हैं। 1. प्राचीन काल, 2. मध्यकाल, 3. वर्तमान काल।

1. **प्राचीन काल :-** सभ्यता के उदय होने के पूर्व सन् 1200 तक का समय, इस युग के संगीत का विवेचन प्रागेतिहासिक प्राग्वैदिक एवं संस्कृत ग्रंथों के आधार पर किया गया है।
2. **मध्यकाल :-** इस काल में संगीत का बड़ा हीउत्कृष्ट विकास हुआ। इस युग में 1201 से 1800 तक के काल को वर्गीकृत किया गया है।
3. **वर्तमान काल :-** इस काल में सन् 1801 से लेकर आज तक की सांगीतिक गतिविधियों की विवेचना की गई है।

किन्तु विद्वानों के मतानुसर ऐतिहासिक काल का विभाजन अन्य रूप से भी किया गया है। जैसे आर्य संस्कृति हिन्दु युग। यवन संस्कृति मुस्लिम युग और अंग्रेज (पाश्चत) युग। परन्तु सामयिक दृष्टिकोण से किया हुआ विभाजन ही पूर्ण और उचित है।

विभिन्न प्रकार के संगीत शास्त्रों और तालों का प्रारंभ कब से हुआ इसका प्रमाण नहीं है। फिर भी भरत के नाट्य-शास्त्र में नाट्योपयोगी संगीत, वाद्य एवं नृत्य का विवेचन मिलता है। उस समय गंधर्व संगीत का प्रचलन था। विभिन्न कालों में संगीत का प्रचलन पर हम चर्चा करेंगे।

वैदिक काल- ईसा के जन्म के तीन सहस्र वर्ष पूर्व भी भारतीय संगीत की उत्कृष्ट अवस्था का प्रमाण सिन्धू घाटी की सभ्यता के खनन से प्राप्त वीणाओं, वंशिओं, विविध चर्मवाद्य कर्ताल विविध मुद्राओं की नर्तनशील मूर्तियाँ आदि के रूप में मिलता है। अन्य उदाहरण ऋग्वेद में मिलते हैं जिसकी रचना और सभ्यता अनुमानित इसा से ढाई हजार वर्ष पूर्व की है।

यज्ञ मण्डप में यज्ञ क्रिया हेतु सामवेद का सामगान होता था इसका विवेचन सामवेद में विस्तृत मिलता है। के. डॉ. फेल्वर हप्लेण्ड के, डॉ. हुग, रियार्ड साइमन एवं अपने भारत के प्रज्ञानन्द महाराज जैसे विद्वानों का कहना है कि वैदिक युग में विभिन्न स्तरों में नयी नयी शैलियों के गीतों का उद्भव हुआ था। साम गान की प्रारंभिक अवस्था में स्वर मण्डल का न होते हुए भी अन्तिम अवस्था में उसका समावेश अवश्य हुआ था। स्वर मण्डल 'नारदीय-शिक्षा' में सात स्वर, तीन ग्राम (षड़ज, गंधार, मध्यम) आदि इक्कीस मूर्च्छनाओं एवं उन्चास तान के समन्वित रूप आता है।

विभिन्न प्रमाणों में यह कहा गया है कि वैदिक संगीत में कोमल स्वरों का प्रयोग नहीं था, परन्तु स्वरों के निश्चित क्रम अवश्य थे। साथ ही रागात्मकता आगे भरत कालीन ताल शास्त्र की जननी है।

सामवेद भारतीय परम्परा का महान ग्रन्थ है उसमें प्रत्येक मंत्र को स्वरात्मक रूप दिया जाता है।

अथर्ववेद में वैदिक संगीत के साथ साथ लोकिक संगीत तथा ''रैम्य'' खूब प्रचलित था। इसमें दुंदुभी के निर्माण शैली का विवरण मिलता है। इस प्रकार प्राचीन काल के संगीत में ताल नियमों की व्यवस्था सचमुच संगीत हेतु अनुकरणीय है।

रामायण एवं महाभारत काल :- वैदिक संगीत के अलावा धार्मिक ग्रन्थों में रामायण एवं महाभारत काल के संगीत लय-ताल तत्व का भारतीय संगीत के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। ये दोनों ही ईसा पूर्व 200 वर्ष तक के प्राचीन युग के संगीत का विवरण देते हैं। इन ग्रन्थों से प्रतीत होता है कि उस काल में प्रत्येक वर्ग के लोगों में संगीत का बड़ा ही महत्व था।

उदाहरण के तौर पर दोनों ही ग्रंथों में युद्ध काल में तथा विजय के अवसरों पर वीरों का स्वागत दुन्दुभी बजाकर किया जाता था। किसी भी महत्वपूर्ण व्यक्ति के आगमन पर स्वागत संगीत से किया जाता था। उस काल तक के लोग समझने लगे थे कि मानसिक तथा शारीरिक थकान को संगीत के माध्यम से दूर किया जा सकता है और लोग अपने प्रत्येक कार्य को संगीत तथा नृत्य के योग से करते थे। संगीत के क्षेत्र में पुरुष तथा स्त्रियों का समान अधिकार था। रामायण में रावण तथा महाभारत में श्रीकृष्ण को संगीत का बड़ा भारी विद्वान कहा गया है।

रामायण में संगीत का उल्लेख बड़ी ही उदार पूर्वक किया

गया है और ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय बिना संगीत के किसी राज्य या राज्यसभा की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। इस क्षेत्र में वाल्मीकि की उदारता संगीतविदों के बीच बड़ी ही सराहनीय है। इस दृष्टिकोण से इस महाकाव्य में, महाभारत कालीन संगीत का सम्पूर्ण विवरण नहीं मिलता है। फिर भी गीत, वाद्य, एवं नृत्य के सम्मिलित उल्लेखों की कमी नहीं है।

इस काल के आरम्भ में वैदिक युग के संगीत के आत्म-सौन्दर्य की झलक मिलती है, परन्तु यह अधिक दिनों तक इसी रूप में न चल सकी। लोगों का जीवन साधन प्रिय न रहा। लोग आत्म सौन्दर्य की जगह बाह्य सौन्दर्य की ओर झुक गये। संगीत के मनोरंजन का रूप भी ऊपर आ रहा था। गणिकाओं का नृत्य तथा संगीत राज-परिवारों का प्रमुख अंग बन चुका था। शास्त्रीय संगीत के साथ लोक संगीत भी पनप रहा था। इसी काल में भारतीय संगीत व्यापारियों द्वारा वर्मा तथा लंका आदि देशों में गया।

मौर्य एवं बौद्ध कालीन संगीत :- इस काल के संगीत में जीवन की व्यापकता का समावेश अधिक हो गया था। अत: इस काल में भारतीय संगीत का प्रचार एवं विकास महत्वपूर्ण रहा है। तत्कालीन लयवाद्यों का स्वरूप रामायण-महाभारत के लयवाद्यों के अनुरूप ही था। इस काल का महत्व भारतीय संगीत के क्षेत्र में बहुत अधिक है।

इस काल की जातक कथाओं से भारतीय संगीत एवं वाद्यों की तत्कालीन स्थिति पर संतोषप्रद प्रकाश पड़ता है। उदाहरण स्वरूप भेरी वादक, जातक में भेरी का उल्लेख मिलता है तथा शंख, जातक शंख का, मतस्य जातक में भारतीय संगीत का विशेष उल्लेख मिलता है। इसमें संगीत प्रतियोगिताओं का बड़ा ही मनोरंजक विवरण मिलता है। इसमें वीणा के सात स्वरों का भी उल्लेख मिलता है। चुल्लू प्रलोभन जातक में नृत्य गीत वादन, कुशला एक नर्तकी का विवरण मिलता है।

अजन्ता के चित्रों में भी बौद्ध कालीन संगीत का ऐतिहासिक प्रतिबिम्ब देखने को मिलता है। उन चित्रों में गौतम बुद्ध को संगीत शिक्षा लेते हुए दिखाया गया है। ब्राह्मणों द्वारा बालकों को संगीत शिक्षा देने की विद्या को भी दिखाया गया है।

इसके बाद के काल को पौराणिक काल कहा गया और इस युग में संगीतज्ञ अपने चरित्र से हटता जा रहा था। उसमें संयम का अभाव होता जा रहा था और उत्छृंखला बढ़ती जा रही थी। नृत्य कला भी उन दिनों उच्च स्तर पर थी। नाट्य-रास तथा जल-क्रीड़ा जनता के मनोविनोद के साधन बन गये थे। गायन का कार्य प्राय: स्त्रियां करती थी। उसी काल में हमें उर्वशी, हेमा, रंभा, मेनका, तिलोत्तमा आदि प्रसिद्ध नर्तकियों के नाम मिलते हैं।

मौर्यकाल में संगीत को अपने पूर्व कालिक मर्यादा तक पहुंचाने के बहुत प्रयास किये गये। इस अन्तिम बौद्ध काल तथा पौराणिक कालों में संगीत अपनी मर्यादा से हट चुका था और मनो विनोद का साधन मात्र रह गया था। इस काल में संगीत के दबे हुए आन्तरिक सौन्दर्य को पुन: उजागर करने की कोशिश की गई।

चन्द्रगुप्त मौर्य तथा अन्य शासकों ने कला की ओर विशेष ध्यान रखा। तत्कालीन स्वर्ण मुद्राओं में वीणा सदृश वाद्य बजाते हुए अंकनों से हमें तत्कालीन सांगितिक उल्लेख प्राप्त हुए हैं। उज्जयिनी के महाराज विक्रमादित्य काल के निर्मित बृहत् नाट्य-शाला और संगीत शाला उस काल के विकसित संगीत कला के आंशिक प्रमाण है। इसी काल के (सन् 400 से 450 तक) महाकवि कालीदास थे जिनकी रचनाओं में तत्कालीन नाट्य एवं काव्य शैली के संगीत हमें प्राप्त होतेहैं। इस काल में गान्धर्व या मार्गी संगीत का सामाजिक स्तर से लोप हो चुका था और देशी संगीत का प्रचार व अध्ययन तत्कालीन समाज में ही रहा था। उस काल के सांगीतिक शब्दों के प्रयोग कालीदास के ''कुमार संभव'' ''अभिज्ञान-शाकुन्तलम्'' मालविकाग्निमित्राम्, 'मेघदूत' 'रितुसंहार' आदि ग्रन्थों में उपलब्ध है।

मृदंग, मूरज, आदि चर्म वाद्यों का प्रयोग तथा नृत्य-कला इस काल में चरम सीमा पर थी। उस काल में ग्रन्थों में मूर्च्छनाओं चाचरी तालों तथा अन्य प्रयुज्म तालों का वर्णन मिलता है। उसकी विशेषता यह थी कि पात्र लक्षणों में ताल का उत्तम पात्रता हेतु एक अनिवार्य तत्व माना गया था।

संगीत कला के प्रचार प्रसार में इसका राजनैतिक दृष्टि से उपयोग बड़ा ही महत्वपूर्ण रहा था। सेल्युकस की पुत्री जो एक उत्तम संगीतज्ञा थी उसका विवाह चन्द्रगुप्त से हो जाने के कारण यूनानी संगीत का प्रथम बार आगमन हुआ तथा भारतीय संगीत उस काल में बुद्ध के उपदेशों के प्रचार-प्रसार का भी माध्यम बना था। परिणाम यह हुआ कि भारतीय संगीत धर्म प्रचार के रूप में तिब्बत, चीन, जापान, मिश्र, यूनान, जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया, बर्मा, इण्डोनेशिया और लंका तक पहुंच गया। इसलिये इन विदेशी संगीतों के मौलिक तत्व भारतीय संगीत से समानता रखते हैं।

इसके बाद का संगीत हर्षवर्धन काल का संगीत कहलाता है और यह काल 606 ई. सन् से 607 ई. सन् तक रहा था।

चूंकि हर्षवर्धन तथा उसकी बहन राज्यश्री दोनों ही संगीत के ज्ञाता एवं प्रेमी थे। अत: उनके काल में संगीत का स्त्रोत इतनी तीव्रता से पल्लवित हुआ कि विदेशों तक धाराऐं पहुंची। महाकवि बाण भट्ट हर्ष के दरबार में ही रहे, और उनकी रचनाओं में तत्कालीन सामाजिक संगीत की झलक परिलक्षित होती हैं। उस समय देश की जनता में गायन, वादन तथा नृत्य के प्रति असीम प्रेम था।

641 ई. सन् से 1000 तक प्राचीन काल को भूतकाल कहा गया जो बौद्ध काल के समान ही था। इस काल में भारत अनेक टुकड़ों में बट गया था और छोटे-छोटे राजाओं का राज्य काल था। ऐसी दु:खद स्थिति में संगीत की प्रारम्भिक परम्परा को आघात पहुंचाना स्वाभाविक था।

इसी काल के संगीत में वर्गवाद का प्रादुर्भाव हुआ और अनेक वर्गों के अनुकूल अलग-अलग इच्छा-अनिच्छा के अनुरूप संगीत का विकास एवं प्रचार हुआ। इस काल में स्त्रियों को संगीत से विशेष प्रेम होता था और संगीत उनके दैनिक कार्य-कलापों में घुल मिल गया था।

महाकवि जयदेव की रचनाओं में, जिसमें ''गीत-गोविंद'' प्रमुख हैं इस काल के राग-नामों और तालों का उल्लेख मिलता है। इसी युग में मोहम्मद गजनी, शाहबुद्दीन गोरी आदि इरानी शासकों ने भारत पर आक्रमण किया। ऐसा कहा जाता है कि इरान के बादशाह बर्हुरामन गोर ने 1200 भारतीय संगीतज्ञों को इरान बुलाकर नोकरी पर रख लिया था। धीरे-धीरे नृत्यों का भी खूब विकास हुआ।

'नारदीय शिक्षा' जो नारद कृत एक सुन्दर ग्रन्थ है, में इस काल का सांगीतिक वर्णन खूब मिलता है।

मुगल काल :-

1100 से 1290 ई. तक को मुस्लिम काल की संज्ञा दी जाती है। इसी बीच मुस्लिम लोग भारत में स्थाई नहीं हो पाये थे परन्तु उनका आक्रमण निरन्तर होता रहा था। ऐसे काल में संगीत एवं अन्य कलाओं का पतन स्वाभाविक था और एक लेखक केप्टन डे ने ''म्युजिक आफ सदर्न इण्डिया'' में लिखा भी है कि भारतीय संगीत का सब से समृद्धशाली युग मुस्लिमों की विजय के पूर्व स्थानीय राजाओं का काल था।

श्री विष्णु नारायण भातखण्डे जी ने इस दु:खद परिस्थिति पर कहा है कि ''हम भारत वासियों ने अपने संगीत के प्राचीन ग्रन्थों को खो दिया और उनकी सुरक्षा की हम कोई व्यवस्था नहीं कर पाये। इसी अवस्था के परिणाम स्वरूप हिन्दी के पूर्ण विकसित संगीत का पतन हिन्दुस्तान पर मुसलमान राजाओं की विजय के साथ हुआ। कैप्टन डे के मतानुसार जिस गति से संगीत शास्त्र की प्रगति रुक गयी एवं शीघ्रता से उसका पतन होने लगा।''

इन पारिस्थितिक विषमताओं के बावजूद भी भारतीय संगीत की पावन धारा पूर्णतया मुस्लिम संगीत की धारा में विलुप्त नहीं हो पाई और इसका विकास मुस्लिम संगीत की सतह पर ऊपर ही ऊपर नव पीढ़ी को आलोकित करता रहा। इसी के परिणाम स्वरूप मुगल काल (1525 ई. सन् से 1707 ई. सन् तक) में भारतीय संगीत फिर एक बार अपनी चरम प्रगति की ओर अग्रसर हुआ।

मैं इस युग के शासकों के नाम पर अलग-अलग कालों में अलग-अलग ढंग से वर्णन करता हूँ।

ख़िलजी युग :- (सन् 1270 से सन् 1332 तक)

संगीत प्रेमी खिलजी के दरबार में अमीर खुसरो ने स्वाभाविक ख्याति प्राप्त की तथा संगीत के क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास का कार्य किया, जैसे कव्वाली गायन शैली का सृजन, साजगिरी सरपरदा, झीलफ आदि रागों की रचना, सितार का निर्माण तबले एवं बायेका निर्माण एवं प्रचार। इन कार्यों के साथ-साथ उन्होंने संगीत पुस्तकों की भी रचना की।

इसी के शासन काल में महान् संगीतज्ञ शारङ्ग देव ने भारतीय संगीत निर्माण में अभूतपूर्व योगदान 'संगीत-रत्नाकर' ग्रन्थ की रचना के रूप में दिया।

तुगलक-काल :-

(1320 से 1412) तक का काल तुगलक काल के नाम से

जाना जाता है। इस बीच प्रशासनिक अव्यवस्था से सांगितिक वातावरण को अस्त-व्यस्त कर दिया, परन्तु मुहम्मद तुगलक जो एक शासक होने के साथ-साथ संगीत प्रेमी भी था, संगीत के पुनर्विकास का सहारा बना। इस काल में भजन, गजल, कव्वाली दादरा आदि की लोकप्रियता जो कि दादरा कहरवा या रूपक में गाई गई सराहनीय है।

लोदी युग :-

1472 से 1525 तक का काल लोंदी युग भारतीय संगीत क्षेत्र में समर्थन एवं संरक्षण का काल था। इस बीच मुस्लिमों के साथ-साथ हिन्दु कलाकारों को भी संरक्षण तथा सहानुभूति मिली एवं इस काल में संगीत में हुए अनुचित परिवर्तनों पर भी प्रतिबन्ध लगा तथा कला की प्राचीनता को स्थायी रखने की व्यवस्था भी की गई।

इस काल में सामुहिक लय-ताल का पूर्ण विकास हुआ तथा सामुहिक गान के निर्वाह हेतु बड़े बड़े आकार के ढोल-मादल आदि वाद्यों का निर्माण हुआ।

सिकन्दर लोदी का नाम संगीत के विद्वान लोग आदर से लेते थे। 1525 ई. सन् के बाद भारतीय शासनकाल में मुगलों का पूर्ण आधिपत्य हो गया, परन्तु यह काल भारतीय संगीत के लिये बड़ा ही महत्वपूर्ण और लम्बे अर्से का काल था। इसमें कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। 1707 ई. सन् तक के समय को मुगल काल में रखा गया और इसके बाद संगीत का वर्तमान युग प्रारंभ हुआ।

मुगल कालीन शासन का आरंम्भ बाबर से हुआ जो स्वयं एक कुशल गायक एवं संगीतज्ञ था। उसके काल के युद्धों में युद्ध संगीत का प्रभाव अच्छा रहा। साथ ही उसमें एक अपूर्व क्षमता भी थी। पानीपत के युद्ध में इसका निर्णायक योगदान था। बाबर के समकालीन पं. मल्लिनाथ पंडित ने उस काल में संगीत का वर्णन 'संगीत-रत्नाकर' पुस्तक में विस्तृत रूप से किया है। यह उस काल की महत्वपूर्ण रचना है।

बादशाह सुल्तान हुसैन शर्की ने ख्याल गायन को सर्वप्रथम प्रचलित किया। इसका विवरण तत्कालीन रामात्य की रचना की व 'स्वर मेल कला निधि' नामक ग्रंथ में मिलता है।

ऐतिहासिक सांगीतिक पुस्तकों आदि से ऐसा प्रतीत होता है कि मुगल काल के प्रथम चरण में दक्षिण संगीत अपनी सुषमा के प्रकाश को विकसित कर रहा था, जबकि उत्तर भारत के विशाल प्रांगण में विदेशी संगीत मिश्रित भारतीय संगीत अपनी विचित्र आभ बिखेर रहा था।

जब बाबर के बाद हुमायूं गद्दी पर बैठा उस समय सूफियों का बड़ा जोर था। सूफी सन्तों तथा भक्त जनों ने संगीत को नैतिक चरित्रों के उत्थान का माध्यम बनाया, जिससे संगीत को अभूपूर्व जीवन शक्ति मिली।

इसी काल में ग्वालियर के सूबा मानसिंह तोमर ने ध्रुपद तथा धमार गायकी का ढंग प्रारंभ किया। इसका वर्णन 'मान कुतुहल' नामक ग्रन्थ में लिखा है। ध्रुपद गायन भारत वर्ष का ओजपूर्ण संगीत है तथा इस माध्यम से भारतीय वीरों की वीर गाथाओं का गान किया गया है।

कैप्टन बिलर्ड कृत गन्थ 'आग्ल' से आभार। यह काल ऐतिहासिक उथल-पुथलों से भरा हुआ है और इसी बीच भारतीय संगीत का गौरवपूर्ण इतिहास भी विकसित हुआ। राजा मानसिंह तोमर के दरबार में ही महान गायक बैजु बावरा का विकास हुआ, बावरा के इतिहास में संगीत सम्मेलन तथा अधिवेशनों का उल्लेख भी मिलता है।

परन्तु ऐतिहासिक प्रसंगों में बैजुबावरा के साथ अन्याय हुआ था। 'आईने -अकबरी' '' नामक ग्रंथ में बक्सू नामक गायक की भूरी-भूरी प्रशंसा की गई है जबकि बैजू बावरा का नाम का कोई गायक नहीं है। कुछ विद्वानों के मतानुसार जिस प्रकार तन्नु मिश्र मुस्लिम काल में तानसेन हो गये थे उसी प्रकार हो सकता है ग्रंथों में बैजू को बक्सू नाम दिया गया हो।

भारतीय संगीत के इतिहास में अकबर के काल का विशेष महत्व है और इस काल में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए। इतिहास को साक्षी मानते हुए पूर्व वर्णित मुगल काल में हम भारतीय संगीत का विकास रूप तो पाते हैं परन्तु संगीतज्ञों के पूर्ण विकास में मुगल शासकों से कोई खास मदद नहीं मिली। इसका मुख्य कारण है धर्म में अन्तर और संगीत का धर्म से सीधा सम्बन्ध।

दक्षिण में संगीत का पूर्ण विकास इसी काल में हुआ था। महाराष्ट्रीय संगीत प्रेम उसी काल में जागृत हुआ। ग्वालियर तथा कर्नाटक में कर्नाटकी संगीत का विकास जन सामान्य में इसीकाल में हुआ था।

बादशाह अकबर उदार नीति का शासक था और उसने संगीतज्ञों को समान रूप से विकास का अवसर किया। उसके दरबार में दोनों ही धर्म के संगीतज्ञों को समान अधिकार और समान अवसर प्रदान किया।

अकबर का काल (1556-1605) तक का रहा। वह स्वयं कलाप्रिय व्यक्ति था उसके दरबार में कई संगीतज्ञों का माननीय स्थान था। जिसमें राजा मानसिंह तानसेन तथा बैजू बावरा प्रमुख थे। अकबर काल में ही महान संगीतज्ञ स्वामी हरिदास जी हुए जिन्होंने अपनी एकाग्रता और प्रतिभा के फलस्वरूप संगीत में आलोकिक और अभूतपूर्व शक्तियों का सम्पादन अमर संगीतज्ञ तानसेन और बैजु बावरा के रूप में किया। इनके संगीतों के साथ कई तरह की किंवदन्तियां जुड़ी हुई हैं और इनकी सम्मोहन शक्ति की याद दिलाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि तानसेन की रचनाशक्ति अद्‌भुत थी एवं अनेक चमत्कार पूर्ण ध्रुपदों की रचना उनके द्वारा की गई।

इससे अतिरिक्त इसी शताब्दी में भक्ति काव्य की गंगा घर-घर मधुर गान के रूप में बही। हिन्दी काव्य के गगन में सूर्य के समान सूरदास एवं चन्द्र के समान तुलसीदास का उदय हुआ। सूरदास एक

उत्कृष्ट गायक भी थे और उनका स्थान भक्ति संगीत में अविस्मरणीय है। उनकी रचनाओं से भक्ति संगीत अत्यधिक समृद्ध हुआ। उनके पदों में रागों एवं तालों के विशेष उल्लेख मिलते हैं।

कबीर तत्कालीन संगीत समाज का दार्शनिक प्रतिनिधि था, जिसने मुगल-कालीन भोग विलास के भवन में भारतीय समाज की फसी नाव को पतवार का सहारा दिया एवं त्रस्त समाज की रक्षा की।

''तुलसीदास कृत रामचरितमानस'' हिन्दी के क्षेत्र में अमर ग्रंथ है साथ ही इसकी लोकप्रियता राजा से लेकर रंक तक सबमें समान है।

उनके संगीत के ज्ञान की गहराई उनके रचित काव्यों में ही मिलती है। उनका कोई अलग इतिहास नहीं है। रूसी लेखिका निवोन्धा कुंची ने लिखा है ''तुलसी के सुंदर काव्य की नीव संगीत है'' और मैं समझती हूँ कि अकबर के काल में जितना संगीत का प्रचार इन कवि ने किया होगा उतना शायद तानसेन भी न कर पाया हो, क्योंकि इस महान कवि की दृष्टि में संगीत और काव्य का एक ही रूप था। इसी एक रूप को दिव्य आभा फैलाने में वे पूर्ण सफल हुए।

1599 ई. के लगभग अकबर के समय में ही कर्णाटकी संगीत पण्डित पुण्डरीक विठ्ठल के चार महाग्रन्थों में से समृद्ध हुआ, 1. सद्राग चन्द्रोदय, 2. रागमाला, 3. रागमंजरी, 4. नरतन निर्णय।

संगीत की दृष्टि से मुगल काल में अकबर काल को स्वर्णकाल कहा गया क्योंकि अकबर ने संगीत को धर्म के समान पवित्र और दिव्य उपकरण माना और इसको विकसित एवं सुन्दर बनाने में अपना पूर्ण योगदान दिया।

अकबर के पुत्र जहाँगीर (1605 से 1627 ई. तक) और जहाँगीर की बेगम नूरजहां दोनों ही संगीत प्रेमी थे। उनको नृत्य से अधिक लगाव था। इनके दरबार में छत्तर खाँ, किलाज खाँ, खर्रमदाद, मख्खू परवेशदाद, हमजान आदि कलाकार थे। पं. दामोदर कृत संगीत दर्पण नामक ग्रन्थ की रचना इसी काल में हुई। उत्तरी संगीतज्ञों के लिये ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण ग्रन्थ सोमनाथ द्वारा लिखित 'रागविबोध' की रचना इसी काल में हुई।

जहांगीर के पुत्र शाहजहाँ के संगीतमय व्यक्तित्व का ऐतिहासिक विवरण कई विदेशी इतिहासकारों ने दिया है। उस काल के संगीत सम्मेलन प्रतियोगिताएँ आदि के आयोजन तथा कुशल कलाकारों को पुरस्कृत करने एवं इन कार्यों में धार्मिक निष्पक्षता के प्रमाण मिलते हैं। यह काल भी ध्रुपद शैली का था एवं फारसी, अरबी ध्वनियों के मिश्रण से भारतीय संगीत में कई नव धुनों का भी विकास हुआ।

इस काल में संगीत के दृष्टिकोण से एक बड़ा ही महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ और संगीत की बागडोर धार्मिक संगीतज्ञों के हाथों से निकलकर व्यावसायिक एवं निम्न स्तरीय सामाजिक लोगों के हाथ में पड़ गई, फलस्वरूप गणिकायें संगीत का प्रयोग जीविकापार्जन हेतु करने लगी। कुछ इतिहासकारों के मतानुसार इस काल तक कत्थक नृत्य का विकास हो चुका था। परन्तु ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में कुछ का मत है कि यह बात उचित नहीं है।

इसके बाद का काल जिसमें औरंगजेब का शासन था, वह भारतीय संगीत के पतन का काल था। औरंगजेब का दृष्टिकोण धर्म के लिये कट्टरपंथी था। इतिहासकारों के मतानुसार वह भारतीय संगीत की आत्मा को पहचान नहीं पाया और इसे समाप्त करने का बड़ा ही दुस्साहस कदम उठाया फलस्वरूप उस काल के संगीतज्ञों की बड़ी दुर्दशा की गयी और उन्हें समाज से बहिष्कृत करने का प्रयास किया गया।

परन्तु संगीत का स्वरूप सिर्फ तत्कालीन श्रृंगार से भरे हुए रीतिगान तक ही सीमित नहीं था। इसके विस्तृत रूप का ज्ञान शासक औरंगजेब को नहीं था और उसका यह प्रयास पूर्णत: असफल रहा। संगीत की चर्चा एवं उसका प्रचार अक्सर नहीं हुआ। इसी काल में अहोबल ने ''संगीत परिजात'' की रचना की जिसका फारसी अनुवाद भी हुआ। लोचन कृत ''राग तरंगिनी'' हृदय नारायण कृत ''हृदय कौतुक'' और ''हृदय प्रकाश'' आदि ग्रन्थों की भी इसी युग की रचना है। इन पुस्तकों में स्वराध्याय और रागाध्याय का विस्तृत वर्णन मिलता है। पण्डित भावभट्ट ने भी इस काल में अपनी सांगितिक पुस्तकों की रचना की और वे एक कर्णाटकी विद्वान थे। इस प्रकार संगीत साहित्य की दृष्टि से यह काल विशेष महत्व का था। तत्कालीन काव्यधारा में भी परिवर्तन हुये। वीरतापूर्ण कविताओं का श्रेय भूषण कवि को जाता है।

इसके बाद मराठा काल का उदय हुआ और 54 वर्षों तक (1707 से 1761 तक) का सांगीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण काल था। इस काल में भक्ति संगीत का विशेष महत्व रहा। रामदास, तुकाराम, आदि भक्त कवियों का विकास हुआ और इन्हें महाराष्ट्र में ऊंचा स्थान प्राप्त हुआ। इस काल में महाराष्ट्र में संगीत का महत्वपूर्ण विकास हुआ।

पंजाब में गुरु नानक के भक्ति संगीत से संगीत का भाव लोगों में जागृत हुआ तो यही कार्य उत्तर प्रदेश में स्वामी रामानन्द की भक्तिपूर्ण रचनाएँ, एक वीर गाथा गान के रूप में अल्हा-उदल ने किया। साथ ही मलुक दास, दूलनदास, वीरू, रैदास आदि संतों ने भी भक्ति संगीत की समृद्ध किया। चैतन्य महाप्रभु के संगीत ने बंगाल में मानवता को चित्रित किया, तो मैथिली के महाकवि विद्यापति ने मिथिला की वृद्धि की।

इन्हीं भक्ति संगीत पर आधारित मणी रूप में विकसित नृत्य एवं संगीत इस भारतीय संगीत की एक स्थायी कलात्मक सम्पत्ति बनी। तत्कालीन शिल्पज्ञों ने भी संगीत के वाद्य एवं वादन विधियों का निर्माण करके अपने संगीत प्रेम को प्रमाणित किया।

इस काल की नारी में अद्‌भुत क्षमता थी। उनमें से चांद बीवी, रजिया सुल्ताना, जेबुन्निसा आदि महत्वपूर्ण हैं।

मुस्लिम होते हुए भी इनमें भारतीय संगीत के प्रति विशेष

अनुराग था और उनका संगीत के विकास में पूर्ण योगदान भी था।

इस काल में रहीम, रसखान, यारी साहब, दरिया साहब, ताज नजीर, करीम, मकसूद, निजामुद्दीन ओलिया आदि अनेक मुस्लिम संत हुए जिनकी कृष्ण-भक्ति रचनाएं संगीत जगत में देदिप्यमान है। मुस्लिम काल में अन्तिम शासक वाजिद अली, जिन्होंने नृत्य सम्बन्धित कई रचनाएं की हैं।

अंग्रेजों का काल :-

भारतीय संगीत के मध्यकालीन युग में अंग्रेजों का काल भी महत्वपूर्ण है। सन् 1750 ई. से अंग्रेजों का काल प्रारंभ होता है। अंग्रेजों का दृष्टिकोण भारतीय संगीत के प्रति बड़ा ही दोषपूर्ण था। उनकी समझ में भारतीय संगीत कोलाहल मात्र था। अत: उन्होंने सदैव इसकी उपेक्षा ही की। इस काल में संगीतज्ञों को सम्मान और पुरस्कार की जगह घृणित दृष्टिकोण ही मिला, परिणाम स्वरूप भारतीय संगीत ऐसे लोगों के हाथ चला गया जिन्हें समाज में घृणा की दृष्टि से देख जाता था। इस प्रकार संगीत पर वैश्याओं का पूर्ण अधिकार हो गया। प्रभावशाली तथा कुलीन लोगों का संगीत से लगभग सम्पर्क समाप्त हो चला था।

इस परिस्थिति में कुछ इने-गिने संगीतज्ञों ने क्षेत्रीय राजाओं के यहाँ आश्रय लिया और अपने मतानुसार बिना किसी शास्त्राधार के ही संगीत की डूबती नैया को तिनके का सहारा दिया। फिर भी संगीत का विकास अवरुद्ध हो चुका था।

रियासती राजाओं ने भी पाश्चात्य शिक्षा पाकर भारतीय संगीत का निरादर करने लगे। ऐसे समय में बंगाल के सौरेन्द्र मोहन ठाकुर ने सांगीतिक ग्रन्थों की रचना कर अपने ताल शास्त्र के ज्ञान का परिचय दिया, उनमें से ''यूनिवर्सल हिस्ट्री ऑफ म्युजिक'' का विश्व संगीत ग्रन्थों में अपना महत्वपूर्ण स्थान है।

भारतीय संगीत में सौरेन्द्र मोहन ठाकुर की परम्परा में रविन्द्रनाथ ठाकुर हुए। उन्होंने परम्परा से प्रचलित संगीत शैली में परिवर्तन कर एक नवीन क्रान्ति का सृजन किया। उनकी कविता स्वरों के सांचों में ढलकर ऐसी निकली जो सदा-सदा के लिये संगीत में अमर हो गई। संगीत की उस शोचनीय स्थिति में उनके काव्य ने बड़ी शक्ति प्रदान की।

उस काल की सांगीतिक स्थिति का उचित मूल्यांकन कैप्टन विलर्ड ने ''ए ट्रोटाइम्स ऑन म्युजिक ऑफ हिन्दुस्तान'' में किया है और इसकी रचना 1814 ई. में हुई थी। अन्य संगीतकारों ने भी इस क्षेत्र में कोशिशें की और सफल भी हुए। इन्हीं ग्रन्थों के द्वारा भारतीय संगीत विदेशों तक पहुंचा और अन्य देशों के संगीत से इसका तुलनात्मक अध्ययन हो पाया।

इसी काल में संगीत के दो ध्रुवों के रूप में पं. विष्णुनारायण भातखण्डे तथा पलुस्कर उदित हुए। एक ने संगीत के कला पक्ष को तो दूसरे ने उसके शास्त्र पक्ष की आजीवन सेवा की। इनका जन्म संगीत के ऐसे संक्रमण काल में हुआ जिसमें उनकी उन्नति बड़ी मुश्किल की बात थी। फिर भी अपनी आर्थिक विपिन्नता के बावजूद भी भातखण्डे जी ने संगीत के विकास का पूर्ण प्रयास किया और सफल हुए। उन्होंने उस काल के छोटे-छोटे राजाओं का आश्रय लेकर संगीत सम्मेलन भी करवाये तथा अलग-अलग मतों के बीच मतैक्य स्थपित करने में सफल हुए, कुछ समीक्षकों ने उन्हें दु:साहस की सीमा लांघने के आरोप में आरोपित भी किया है, परन्तु तत्कालीन पुस्तकों के अध्ययन से, उस विशेष परिस्थिति में उनके कार्यों के सही मूल्यांकन से तथा संगीत के गौरवपूर्ण रीति में उनकी एकनिष्ठता से पता चलता है कि उन्होंने आवश्यकतानुसार आजीवन ही संगीत को परिवर्तित एवं परिबद्धित करने में सफलता पूर्वक लगे रहे। संगीत घरानों की संकीर्ण मनोवृत्ती को त्यागने का पहला उदाहरण उन्हीं से मिलता है। ऐसा करके उन्होंने संगीत की समृद्धि के मार्ग को प्रशस्त किया। इस प्रकार भारतीय संगीत को नयी जीवन शक्ति तथा एक नवीन परम्परा मिली।

श्री विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने भी भातखण्डे के अनुरूप ही विपरीत परिस्थिति में संगीत की भरपूर सेवा की तथा नवीन स्वरलिपि-पद्धति को जन्म दिया। भातखण्डे स्वर लिपि की भांति ही यह भी खूब लोक प्रिय हुई, परन्तु आजकल इन्हें सम्प्रदाय प्रवर्तक मानना भ्रम मूलक है तथा निराधार ओर अनुचित भी। इन विवादों के बावजूद दोनों ही भारतीय संगीत के परम्परावाहक रहे हैं और उनका आदर करते हुए उसी को आगे बढ़ाने के लिये सतत प्रयत्नशील रहे।

इनके अलावा तत्कालीन कलाकारों ने संगीतज्ञों में बालकृष्ण बुआ, इचल करंजीकर, रामकृष्ण वझे, राजाभैया पूंछवाले, राजा नवाब अली, उ. रज्जबअली खां, उ. मस्सूखां आदि हैं।

इस काल के संगीत की समृद्धि एवं प्रचार और संरक्षण स्वर लिपि के आधार पर हुए संगीत ग्रंथों के निर्माण से ही सम्भव हुआ क्योंकि उस काल में संगीतज्ञों को न कोई सम्मान मिल रहा था और न कोई संरक्षण ही इस दिशा में पं. भातखण्डे जी ने बड़े ही उल्लेखनीय कार्य किये।

वर्तमान काल के परिवेश में श्री पुरुषोत्तम दाधीच जो कि डॉ. पुरुदाधीच के नाम से विख्यात हैं इन्होंने संगीत के नृत्य पक्ष को लेकर करीब एक दर्जन से अधिक नृत्य सम्बन्धित ग्रन्थों की रचना की है जिसका लाभ संगीत जगत के नृत्य साधकों को आईने की भांति प्राप्त है। पाठशाला प्रणाली में और परिक्षा में आने वाले प्रश्नों के उत्तर इन्हीं के ग्रन्थों में उपलब्ध हैं।

अवन्तिका घराने के नृत्य पुरोधा पं. श्रीधर महाराज द्वारा रचित कई भाव परणें और विद्यालयीन पाठ्यक्रमानुसार पुस्तकों की रचना तत्कालीन काल में बहु प्रचलित है।

अत: आज हम देखते हैं कि संगीत स्वतंत्रतापूर्वक विकसित होता जा रहा है।

- ए-18/4, महानंदा नगर, उज्जैन (म.प्र.)-456010
संपर्क- 9827341032

साक्षात्कार

प्रख्यात नाटककार एवं निर्देशक दयाप्रकाश सिन्हा से भँवरलाल श्रीवास की बातचीत

रंगमंच संघर्ष का रास्ता है

दया प्रकाश सिन्हा लब्धप्रतिष्ठ और ख्याति प्राप्त नाटककार हैं। नाटककार, निर्देशक और अभिनेता के रूप में वे रंगमंच से पिछले पचास वर्षों से सम्बद्ध रहे हैं। उनके नाटक देश के अग्रणी विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में निर्धारित हैं तथा उन पर अनेक अध्येता पीएच.डी. के लिए शोध कर चुके हैं। उनके नाटक अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवादित हैं तथा भारत के अनेक नगरों में और विदेशों में भी उनके मंचन होते रहे हैं। दया प्रकाश सिन्हा के अन्य प्रतिष्ठित नाटक हैं- 'कथा एक कंस की', 'सम्राट अशोक', 'इतिहास-चक्र', 'सीढ़ियाँ', 'मेरे भाई: मेरे दोस्त' आदि। उन्हें कई सम्मान प्राप्त हुए जिनमें प्रमुख राष्ट्रपति द्वारा प्रदत्त 'सरदार वल्लभ भाई पटेल सम्मान' उल्लेखनीय है। भारत भवन में पिछले दिनों उनके रंग अवदान पर छः दिवसीय नाट्य समारोह के दौरान विशेष रूप से दया प्रकाश सिन्हा भारत भवन में उपस्थित हुए। उस दौरान उनसे हुई अंतरंग बातचीत...

● **आपका नाट्य लेखन के प्रति लगाव और रंगकर्म के साथ रिश्ता कैसे बना था ?**

– पता नहीं कैसे बना है। मुझे लगा कि जैसे कुछ लोग बचपन से गाने लगते हैं, कुछ लोग बचपन से पेटिंग बहुत अच्छी करते हैं, या तो शायद जीन्स में होगा या फिर पूर्वजन्म ही होगा। मुझमें नाटक के प्रति आकर्षण था और बचपन से मैंने कुछ नाटक-आटक देखे थे तो उनका भी प्रभाव होगा। मगर तमाम नाटक देखते हैं, सब तो नाटककार या निर्देशक नहीं बन जाते। जब अन्दर से आन्तरिक कुछ बनावट ऐसी होती है जो उनको आकर्षित करे। मेरे साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ होगा।

एक कहानी बताते हैं। बीस-इक्कीस साल का था तब पहला नाटक किया था। मैंने अपना पहला नाटक, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का 'संगमरमर पर एक रात'। उस नाटक में मैं 'शाहजहाँ' बना था। जब मेरा मेकअप हो गया तो मेकअप-मेन ने मुझसे यह कहा कि 'मेकअप तो मैंने कर दिया। मेकअप के जरिये मैंने आपके खून में कुछ जर्म्स डाल दिये हैं थिएटर के। अब आप इनसे कभी मुक्त नहीं हो सकेंगे। ज़िन्दगी भर ये जर्म्स आपको परेशान करते रहेंगे।' ऐसा ही हुआ कि वो नाटक फिर कन्टीन्यू कर गया। फिर मैंने एक-दो नाटक किये, फिर लगा कि मैं लिख सकता हूँ। ग्रुप से जान-पहिचान हो गयी थी, कौन लड़के-लड़कियाँ एक्टिंग करते हैं वे भी ज्ञात हो गया था। कर सकते हैं। फिर मैंने अपना पहला नाटक लिखा। ज्यादा उम्र नहीं थी।

तेईस साल का था। उसको फिर हमने ग्रुप के साथ किया और इत्तेफाक ऐसा, उस समय 1959 में संगीत नाटक अकादमी ने पहला 'सर्वदेशीय अखिल भारतीय नाट्य समारोह' आयोजित किया, उसमें हमारे नाटक को भी बुला लिया। उस समय नाटक बहुत कम होते थे सारे हिन्दुस्तान में। हमारे नाटक को बुला लिया तो चौबीस साल की उम्र में हम इलाहाबाद से अपना नाटक लेकर आये। नाम था- 'साँझ सवेरा'। उसके निर्देशक भी हम थे, लेखक भी हम थे, हीरो भी हम थे। बड़े लोगों ने ऑटोग्राफ लिये। बहुत अच्छा लगा। फिर वो नाटक का सिलसिला चलता रहा।

फिर ऐसा हुआ कि जब नाटक का सिलसिला चल रहा था, मैं ऑल टाइम एक्टर ही या कुछ थिएटर से जुड़ा था तो मैंने ट्रेनिंग के लिए इधर-उधर एप्लाई किया। उसी 1959 में 'नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा' स्थापित हुआ था। नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा का पहले नाम था- 'एशियन थिएटर इंस्टीट्यूट' बाद में नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा नाम हुआ। उस जमाने में इसके डायरेक्टर थे या प्रिंसिपल थे, उनका नाम था- सत्तू सेन। बहुत बड़े थिएटर के डायरेक्टर थे और टीचर थे। उसमें मेरा एडमीशन हो गया क्योंकि मैं थिएटर में जाना चाहता था। उसी साल, मैंने और भी, विदेशों में भी एप्लाई किया था। देखते रहते थे कि कहाँ-कहाँ स्कूली ड्रामा है। लंदन में भी एडमीशन हो गया और हमको लंदन जाने का किराया भी मिल गया, यू.पी. गवर्नमेन्ट से। उसी साल मैं लेक्चरर हो गया इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में और बाद में कम्पटीशन में आ गये। घरवालों ने कहा कि कहाँ थिएटर में जाओगे। तो हिम्मत नहीं पड़ी, थक गये। लेकिन 'चोर चोरी से जाए, हेराफेरी से नहीं जाता'। तो

हेराफेरी कर रहे हैं अब तक।

● **अभी तक कुल कितने नाटक लिखे हैं आपने ?**

– मैंने कोई चौदह-पन्द्रह नाटक लिखे हैं और बहुत रेग्युलर नहीं लिखे। क्योंकि कोई मजबूरी या दबाव तो था नहीं कि नाटक करो या उससे कुछ पैसा मिल जाए। इसलिए जब जो मन में आया तब लिखा, जब लिखने का मन हुआ तब लिखे या घर की परिस्थिति या वातारण वैसा था तब लिखे हैं।

मैंने पहला नाटक लिखा था, 'साँझ सवेरे' मेरा पहला नाटक था, उसमें पीढ़ियों का संघर्ष है। मुझे उस जमाने में लगता था कि जो पुराने वेल्यूज हैं वो बड़े आउट ऑफ डेट हैं और आज नया ज़माना कुछ और है। नया ज़माने में रफ्तार है, ये है वो है। उसमें पीढ़ियों का संघर्ष है पिता और पुत्र का संघर्ष है। हमारे पिताजी बहुत ही आदर्शवादी थे। एक पैसा उन्होंने रिश्वत का नहीं लिया था और उनके कलिग्स जो थे वो सब फेहरिस्त कर रहे थे पैसे में। उस समय हमको लगता था कि जब यही युग-धर्म है तो उनको युग-धर्म का पालन करना चाहिए। वो इसी तरह का नाटक था। मैं उसे कहता हूँ- 'वैल्यू का संघर्ष'। एक शाश्वत मूल्य है और एक आधुनिक कॉमर्शियल, मर्सीनरी वेल्यूज है। एक शाश्वत टाइम एज़ वेल्यूज है और एक मर्सीनरी वेल्यूज है। उसका संघर्ष उस नाटक में दिखलाया है और उसमें दिखलाया है कि बाद में शाश्वत मूल्य ही शाश्वत है, वो ही चलेंगे। उस ज़माने में पढ़ते हुए संघर्ष हुआ।

फिर मेरा दूसरा नाटक था- मन के भँवर। वो 1960 में लिखा और 1961 में मैंने किया था। उस समय साइकोलॉजी पढ़ रहा था एक्स्ट्रा, अपनी नॉलेज के लिए। फिर मैंने लिखा कि साइकोजी होने के बाद भी आदमी मजबूर हो जाता है, उबर नहीं पाता। मैंने एक कथा बनायी, उसी पर लिखी और मैंने किसी साइकोलॉजी की मैगजीन में एक-दो तस्वीरें देखीं, एक साइकोलॉजिस्ट एक लड़की से बात कर रहा है, समझा रहा है उसको और अगले में वो जहर खाकर पड़ा हुआ है। हमने कहा साइकोलॉजिस्ट भी जो होते हैं, साइकोलॉजिस्ट पेशेन्ट कभी-कभी हो जाते हैं। उसने ही इंस्पायर किया, उस पर मैंने नाटक लिखा- 'मन के भँवर'। वो भी बहुत अच्छा हुआ।

उसके बाद मैंने कॉमेडी लिखी। हमारी शादी हो गयी थी। शादी के बाद के पीरिएड्स सभी अच्छे होते हैं। सभी के अच्छे होते हैं। मैंने कॉमेडी लिखी। हमारी सास ने हमें कहा कि तुम बड़ा अच्छा नाटक लिखते हो, मैंने सुना, वो कहीं पढ़ाती थीं, हम लोगों के कॉलेज के लिए एक नाटक लिखकर भेजो। तो मैंने कॉमेडी लिखी, जो आज हुई है। मैंने नाटक बोला, हमने कहा तुमने माँगा है तो तुम लिखो। वो बेचारी लिखती गयी और मैं बोलता गया। वो कभी-कभी हमारी पत्नी कहा करती थी कि मैं मूरख हूँ। जब चूँकि हमारा एटमॉसफीयर हँसी-खुशी का था तो कॉमेडी उभर करके आयी। जब बच्चे थे, संघर्ष कर रहे थे तो उनको, तो कहीं न कहीं मैं ज़िन्दगी से जुड़ा रहा, नका नहीं की मैंने किसी नाटक की। क्योंकि बहुत से लोग फैशन के लिए लिखते हैं।

एक जमाने में नाटकों का एक दौर आया था एब्सर्ड थिएटर का, ऊलजलूल नाटक लिखो। 'वेटिंग फॉर गोडो' लिखो, 'जू स्टोरी' लिखो, वेस्ट से इंस्पायरड् था तो यहाँ पर भी तमाम लोग लिखने लग गये। मैंने नहीं लिखा। फिर एक फ़ैशन ये आया कि आप गाँव का कुछ एलीमेण्ट इसमें ले आओ, भारतीय। मुझे ये लगा कि जब हम गाँव जानते ही नहीं तो हम कैसे गाँव का लिखें ? हम तो अपनी ईमानदारी से लिखेंगे। मैंने उस पर नहीं लिखे। वो कारन्त जी का युग था। संगीत नाटक अकादमी का आग्रह था कि जिस किसी नाटक में कोई फोक एलीमेण्ट नहीं होगा उसको हम ग्राण्ट नहीं देंगे। वो संगीत नाटक अकादमी का एक तरह का डिक्टेशन था, डिक्टॉक था कि नाटक इस तरह से ही लिखे जाएँ। मगर क्रियेटिव में कुछ डायरेक्शन नहीं दे सकते, क्रियेटिबिटी तो स्वत:स्फूर्त होती है। तो मैंने नहीं लिखे और फिर मैंने यह भी देखा कि लोग जो गाँव में गये ही नहीं हैं, उन्होंने दो-चार गाने गाँव के रख लिये और थिएटर करने वालों के पास ज्यादा पैसा तो होता नहीं है,वो सिंगर्स और म्यूजिशियन्स को हायर नहीं कर सकते थे तो अपने ही एक्टर्स से गवाना शुरु कर दिया और ऐसा बेसुरा गाया कि थिएटर से वे गायब ही हो गयी। तो मैंने वो नहीं किया।

फिर मैं दिल्ली गया और दिल्ली में मैंने सात-आठ साल में छ:-सात नाटक लिखे, क्योंकि ये पीरिएड मेरा एक्युअली ठीक रहा था। फिर मैं फिजी चला गया। उस समय काफी नाटक लिखे मैंने। बहुत सारे नाटक। 'कथा एक कंस की' भी मैंने उसी पीरियड में लिखा। मेरा एक नाटक बड़ा पापुलर हुआ था- 'इतिहास चक्र'। 'ओ अमेरिका' और 'सादर आपका' भी इसके बाद लिखा। सब मैच्योर प्ले है। मगर उस आठ साल में मैंने छ:-सात नाटक लिखे। क्योंकि मैं बहुत सिम्पल था। 1976में मैं फिजी चला गया। फिजी पोस्टिंग हो गयी। वहाँ पत्नी का देहान्त हो गया। उसने शायद इफेक्ट किया और कोई तेरह साल बाद फिर मैंने नाटक लिखा- 'सीढ़ियाँ'। तेरह साल का गैप हो गया।

● **'सीढ़ियाँ', जिसका मंचन आप कह रहे थे वहाँ शरद पर्व के दौरान किया था।**

– पैंतीस शो किये हम लोगों ने, पर तेरह साल कुछ नहीं किया, लेकिन तेरह साल में बहुत बदल गया। यानी जो हमने शुरुआत इतिहास के और पहले तो वो ज्यादातर सोशल प्लेज थे। 'अपने-अपने दाँव', 'साँझ सवेरा' और 'मन के भँवर' ये सब सोशल प्लेज थे, जीवन से जुड़े हुए थे। फिर उसके बाद धीरे-धीरे परिवर्तन हुआ, जैसे-जैसे हम मैच्योर हुए, फिर दिल्ली में आकर के थोड़े और मैच्योर हुए तो ये हमारे जीवन से जुड़े हुए गीत लिखे- 'ओ अमेरिका', 'इतिहास चक्र'।

● **'सम्राट अशोक'।**

– 'सम्राट अशोक' तो बहुत बाद में लिखा। इसके बाद फिर मैंने पुराण को, पौराणिक कथाओं को मिथक का इन्टरप्रिटेशन करके 'कथा एक कंस की'। ये बहुत ही डिस्टर्ब पेस है। फिर इसके बाद मैंने

और नाटक लिखे। चार-चार, छः-छः, सात-सात साल के गैप के बाद नाटक लिखे। 'इतिहास' लिखा, 'रक्त अभिषेक' लिखा। मैंने 2005 में लिखा 'रक्त अभिषेक' और उसके करीब दस साल बाद फिर मैंने 'सम्राट अशोक' लिखा। तो 'सम्राट अशोक' है, 'रक्त अभिषेक' है, कथा एक कंस की है। ये सभी बड़े नाटक हैं। बड़े विश्वास। राजनीति, कला सब।

- **अभी भी नाट्य लेखन चल रहा है ?कोई नया नाटक लिखने का सोच रहे हैं ?**

– हाँ, सोच रहे हैं थोड़ा-बहुत। मैं लिखना चाहता हूँ 'अब्दुल रहीम खानखाना' पर मगर वो प्योर इमेजिनेशन तो नहीं चल रहा है, अब तक किसी पर्सनेल्टी का आधार लेकर नाटक लिख रहे हैं। मेरे ख्याल से आदमी की क्रियेटिबिटी भी इससे प्रभावित होती है। अब 'अब्दुल रहीम खानखाना' लिखूँगा तो उसमें सहारा लेकर लिख रहे हैं न, खाली इण्टरप्रिटेशन कर रहे हैं, मगर जो क्रियेटिबिटी का खुलापन था, जो क्रियेटिबिटी की उड़ान थी, मेरे ख्याल से यूथ में ज़्यादा होती है।

- **आपका सबसे प्रिय नाटक कौन-सा रहा ?लिखने में भी और मंचन में भी, एक लेखक के बतौर और निर्देशक के बतौर और अभिनेता के बतौर...**

– देखो, मैं निर्देशक नहीं हूँ। निर्देशन करता हूँ मगर मैं मूलतः निर्देशक नहीं हूँ। शुरुआत भी निर्देशक के रूप में की थी लेकिन मैं कन्फाइण्ड करता हूँ अपने नाटकों के निर्देशन में और वो भी इसलिए कन्फाइण्ट करता हूँ खासतौर से अपने लिखे नाटक को निर्देशित करता हूँ पहली बार क्योंकि मैं चाहता हूँ कि नाटक को मंच-सिद्ध कराऊँ। आप नाटक लिख लेते हैं मगर वो मंच पर कैसा आयेगा, हम नहीं जानते। तो हम उसको एक्सपेरीमेण्टली मंच पर प्रजेन्ट करते हैं, उसमें ज़रूरत होती है तो उसे संशोधित करते हैं। उसमें बहुत सारे अंश निकलते हैं। जैसे कल वो कह रहे थे 'सम्राट अशोक' का पहला प्रोडक्शन देखा था तो वह बहुत लम्बा था।

- **हाँ, तीन घण्टे का था, बिना इण्टरवेल के। पिक्चर हो गयी वो तो।**

– मैं बिना इण्टरवेल के ही करता हूँ लेकिन अब दो घण्टे का कर दिया।

- **फिर उसको शॉर्ट किया ?**

– हाँ, उसको शॉर्ट किया, एडिट किया। मैं नाटक को इसलिए लिखता हूँ ताकि उसको मंच योग्य बना सकूँ, उसे मैं मंच-सिद्ध कर सकूँ और मैं नाटक में बड़े डिटेल इन्स्ट्रेक्शन्स लिखता हूँ क्योंकि मैंने किया है नाटक। निर्देशक को भी सहारा मिलता है। जैसे 'सम्राट अशोक' में एक दृश्य में जो नायिका है वह वैद्या है और अगले दृश्य में वह एक महारानी बनकर आती है। जब नाटक करने खड़े हुए तो हमने देखा कि अरे ये कपड़े कब बदलेगी ? वैद्या से महारानी बनने के लिए तो उसको गहने पहनना है तो मुझे एक सीन बीच में डालना पड़ा।

अच्छा पुराने लोग जो रंगमंच से जुड़े हुए नाटककार नहीं हैं, वो सीधे से लिख देते हैं। जैसे जयशंकर प्रसाद जी का बहुत बड़ा नाम है। मैंने एक एकांकी पढ़ा.... 'प्रायश्चित' एकांकी। उसमें पाँच दृश्य हैं, पाँच लोकेल हैं। कन्नौज का राजदरबार, मोहम्मद गौरी का राजदरबार, अफगानिस्तान के भीतर, रणभूमि, श्मशान भूमि। इतने सारे उन्होंने शेड्स डाल दिये छः पेज के नाटक में। वो खेले जाने के लिए बनाया गया था ? नहीं। वो तो सम्भव ही नहीं है। बस लिख दिया। डॉयलॉग के फॉर्म में लिख दिया और कह दिया कि नाटक है। नाटक तो वो है जो मंचस्थ हो सके। इसलिए मैं नाटक को मंच-सिद्ध करता हूँ और मेरे जितने नाटक हैं, मंचोपयोगी हैं।

- **नाटक कला भी है और साहित्य भी है ? आप क्या कहना चाहेंगे ?**

– ये सही है, ऐसा है। लेकिन जब नाटक कला के रूप में है तो वो छपा हुआ नाटक अनफिनिश्ड प्रोडक्ट है कला का। जब वह मंचस्थ होता है, वो अमूर्त क्षण जो गुजर जाता है, वो नाट्य-कला का हाई-प्वाइण्ट है। स्टेज और समय। वरना तो लिखा हुआ नाटक है और अन्य कलाओं से भिन्न है। क्योंकि जब पेंटर पेंटिंग करता है तो वह पेंटिंग अकेले में करता है और फिनिश कर देता है, सब लोगों को दिखाता है। साहित्यकार कहानी लिखता है, कविता लिखता है, फिनिश हो जाती है, पाठक पढ़ता है, उसका पाठक से कोई सम्बन्ध नहीं होता। पाठक अपनी तरह से, जिस तरह से चाहे, अलग-अलग एन्जॉय करे। लेकिन नाटक जब होता है, मंचस्थ होता है तो वो क्षण निकल जाते हैं और वो ही रचना के क्षण होते हैं और उस रचना के क्षण में दर्शक का भी योगदान होता है। कोई दर्शक नहीं होगा तो मंचस्थ नहीं हो पायेगा नाटक। तो ये अमूर्त कला है, क्योंकि वो जो रचना का क्षण है वो बहुत ही अमूर्त है। अमूर्त है न, क्योंकि वो तो गुज़र गया और जिसमें दर्शकों का योगदान हो। अवशेष कला है। नाटक कला के रूप में, उसका शेष प्वाइण्ट वो ही है, जब उसकी रचना में दर्शकों की और अभिनेताओं की बराबर की भागीदारी हो। कितना क्लियर है। कल तक अक्टूबर था, आज नवम्बर शुरु हो गया। समय बीतता है न।

- **हिन्दी में मौलिक नाटकों का आभाव क्यों है ?**

– वाकई हिन्दी में मौलिक नाटक तो कम लिखे गये हैं, बड़े-बड़े लोगों ने कुछ लिख दिये तो वो स्टेजों पर नहीं हैं क्योंकि मंच से उनकी।

हिन्दी में मौलिक नाटकों का अभाव, पहली चीज़ तो यह है कि हमारे यहाँ नाटक ही नहीं हैं। मतलब वैसे तो नहीं है जैसे बंगाल और महाराष्ट्र में है। वैसे नाटक नहीं हैं हिन्दी में, हिन्दी भाषी प्रदेश में। मैं आपको बताऊँ। हमारे यहाँ पहले हिन्दी में मौलिक नाटक लिखे ही नहीं गये। एक्चुअली हमारे यहाँ नाटक की परम्परा है। हमारे यहाँ जब बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी में मुसलमानों ने आक्रमण किया, उसके बाद नाटक की परम्परा समाप्त हो गयी। अरे गिनी तो कितने नाटककार हमको अभी भी मिल जाते हैं। प्रकृति में भी लिखने वाले मिल जाते हैं। कालिदास हैं, विशाखदत्त हैं, भास हैं, नागार्जुन हैं। फटाफट गिनाते चले जाओ तो इतने सारे नाटककार मिल जाते हैं। एक हज़ार साल के भीतर, मतलब उन्नीसवीं शताब्दी तक, बीसवीं शताब्दी तक। फिर आकर आपको मिलेंगे भारतेन्दु हरिशचचन्द्र। आठ-नौ साल के गैप के बाद अगर आप किसी एक नाटककार का नाम लेंगे तो भारतेन्दु का नाम लेंगे या अमरनाथ का नाम लेंगे जिसने 'नरसभा' लिखी। तो गैप है। हमारे यहाँ नाटकों का अभाव तो परम्परागत रूप से है और जो कुछ बाद में लिखे गये वो पारसी थिएटर में नाटक लिखे गये और पारसी थिएटर बुरी तरह से शेक्सपीयर से इंस्पायर्ड था। आगाहश्र कश्मीरी के अधिकांश नाटक अनुवाद हैं या इन नाटकों की कॉपी उसने की है।

तो मूल नाटक तो लिखे नहीं गये और पारसी थिएटर समाप्त हो गया 1930-32 के बाद। क्योंकि जब टॉकीज/सिनेमा आ गया तो पारसी थिएटर अपने आप मर गया। अब पारसी थिएटर कोई रेग्यूलर थिएटर की तरह नहीं, टूरिंग कम्पनी करते थे। तो किसी किसी शहर में, किसी गाँव में वो दो-तीन साल के बाद पहुँच जाते थे, भीड़ इकट्ठी हो जाती थी। तो अच्छा माडर्न थिएटर का काम जब देश आज़ाद हुआ तो था ही नहीं।

आजादी के बाद पृथ्वीराज ने नाटक किये, 'पृथ्वी थिएटर' स्टेबलिश किया, तब हम हिन्दुस्तानियों को पहली बार यह आत्मबोध हुआ कि ये नाटक मौलिक कैसे होते हैं। इसलिए परम्परा की कमी है और जब परम्परा की कमी है तो थिएटर के प्रति जो आग्रह है, जो शौक होता है वो भी हमारी जनता में नहीं है। वो तो आज़ादी के बाद अमैच्योरड थिएटर मूवमेन्ट स्टार्ट हुआ जो बच्चों ने स्टार्ट किया। युवा लोगों ने स्टार्ट किया। जब इन लोगों ने स्टार्ट किया तो अमैच्योर थिएटर में भी धीरे-धीरे कुछ लोगों ने अच्छे अभिनय किये, मगर सामान्य जन में यह बात नहीं पहुँची है कि वह टिकिट खरीद कर देखने आये। पात्र उम्मीद करते हैं, टिकिट बिकते नहीं हैं। ये मान लीजिए कि पचास रुपये का टिकिट बेचा, उसमें बहुत सारे लोग बिना टिकिट के आते हैं। मगर यदि फिल्मी एक्टर आ जाए तो कितने का टिकिट बिक जाएगा? थिएटर के प्रति वो...

इसलिए कोई नाटक लिखेगा क्यों? इसलिए नाटक का

अभाव है। अमैच्योर थिएटर है। जो प्रोफशनल थिएटर था, जैसे कि पारसी थिएटर होते थे, उसमें होल-टाइम राइटर होते थे जो थिएटर से बुरी तरह से जुड़े हुए थे। उनकी जो राइटिंग थी, वो तो आज का प्ले-राइटर क्रियेट नहीं कर पाता क्योंकि थिएटर से जुड़ा नहीं है। हम तो एक्सेप्शन हैं। अपने आपको एक्सेप्शन मानते हैं कि मैं थिएटर से जुड़ा हूँ तो मैं जानता हूँ। लेकिन और तो लोग जुड़े हुए नहीं हैं और जिन लेखकों ने ये लिखा, अच्छा लिखा, लेकिन जब कोई नाम नहीं था तो इन्हीं के नाम हो गये। जैसे 'अंधा युग' का नाम हो गया। 'अंधा युग' तो थिएटर के लिए प्ले है ही नहीं। अब कोई नहीं था तो वो चल गये।

शेक्सपीयर के नाटक हैं, बर्नाड शॉ के नाटक हैं, यहाँ किस-किस की कॉपी इन्होंने नहीं की। ग्रीक नाटक, ईसा से चार सौ साल पहले, सोक्रेट्स के नाटक किये हैं, 'एण्टीगनी' वगैरह जो इन्होंने किये, 'इडिपस' किया। पहले से सब करते थे। जब अलकाजी साहब आए, उन्होंने तो इतनी नकल की इन नाटकों की, ... को ट्रांसलेट करके 'चेखोव' किया। उन्होंने कुछ रशियन प्लेज किये। सेटिस प्लेराइट..... को लेकर किया। इप्सन के प्लेज किये। ये सब किये।

शुरु में जो एमैच्योर थिएटर था वो अंग्रेजों के नाटकों की कॉपी-ऑपी करता था। बाद में फिर इन्होंने बाँग्ला और मराठी के प्लेज के अनुवाद करना शुरु किया तो हिन्दी में तो नाटक लिखे ही नहीं गये, बल्कि इतनी नफ़रत करते हैं, कल को किसी मराठी नाटक 'तुगलक' को कह रहे थे वो हिन्दी नाटक है, जबकि वो कन्नड़ नाटक का ट्रांसलेशन है। तो ट्रांसलेशन्स को ही वो अपना हिन्दी प्ले मानने लग गये। तो उसमें कौन हिन्दी नाटक लिखेगा? एक बात। अब निर्देशक को तो कोई ज़रूरत नहीं, वो कोई भाषा का पक्षधर तो है नहीं, उसको तो अच्छा नाटक चाहिए। अच्छा नाटक अगर अमेरिकन प्लेराइट या अंग्रेज प्लेराइट या नार्वेज़ियन प्लेराइट या सेटिस प्लेराइट या रशियन प्लेराइट का अनुवाद अच्छा मिल जाता है तो वह तो कर लेगा। वो हिन्दी प्ले क्यों लिखेगा? क्यों इन्तज़ार करेगा कि हम हिन्दी का मौलिक नाटक करें? दूसरी चीज़ यह कि हिन्दी प्लेराइट जो है वो थिएटर से जुड़े नहीं हैं इसलिए उनकी प्ले क्वालिटी भी खराब होती है। वो इतने अच्छे प्ले नहीं लिख पाते। तीसरी चीज़ यह है कि जो

डायरेक्टर है वो नाटककार को वो ड्यू नहीं देते हैं, महत्व नहीं देते, अपना नाम बड़ा-बड़ा छापते हैं। जैसे फ़िल्म में, 'शोले' फिल्म के डायरेक्टर को सब जातने हैं हीरो को सब जानते हैं, मगर लिखा किसने है कोई नहीं जानता। फिर प्रोडक्शन होता है तो कोई।

फिर तीसरी चीज यह है कि नाटककार हिन्दी का साहित्यकार है, कविता और कहानी लिखता है और उपन्यास लिखता है तो उसे यशमिलता है कहानीकार के रूप में कि 'बहुत बड़े कहानीकार हैं'। लेकिन नाटक लिखता है तो उसको तो कोई यश मिलता नहीं क्योंकि नाटक होते ही नहीं। अब प्रकाशक भी नाटक नहीं छापना चाहता, क्योंकि वह जानता है।

क्योंकि नाटक कोई पढ़ने के लिए तो खरीदता नहीं है। और ग्रुप में नाटकों की जरूरत नहीं है क्योंकि पूरे विश्व के नाटक उसके पास उपलब्ध है। तो निर्देशक भी हिन्दी के नाटककार के नाटक की चिन्ता नहीं करते। और पाठक जैसा उपन्यास, कहानी पढ़ता है, नाटक को वो मिलता नहीं। न निर्देशक को ज़रूरत है हिन्दी प्लेराइट की और न प्रकाशक को ज़रूरत है प्लेराइट की तो फिर हिन्दी प्लेराइटिंग की ज़रूरत नहीं है। सही है न? प्रकाशक कहता है कि बिकती नहीं है, कोई नाटक खरीदता नहीं है और दूसरी बात प्रकाशक चाहता है कि किताब की कीमत भारी-भरकम हो, दो सौ किताब बिके, तीन सौ की किताब बिके, पाँच सौ किताब बिके, आजकल तो यही टेण्डेण्सी है। महँगी किताबें बिकती हैं। तो नाटक भी वह चाहता है कि अगर छापें तो उसका दाम रखें और बिके। अब दो सो-ढाई सौ रुपये का वह दाम रखेगा और दर्शक भी यह चाहता है, मान लो, छपी हुई किताब का नाटक भी करते हैं, सौ पेज का नाटक है तो सौ रुपये में फोटोकॉपी करवाकर अपनी तैयारी कर लेगा। किताब क्यों खरीदेगा?

- **अधिकतर उसी की फोटोकॉपी कराकर अपने सारे अभिनेताओं में बाँट देते हैं।**

– किताब खरीदते ही नहीं हैं। एक तो नाटक करते नहीं और अगर हिन्दी का नाटक उसने किया भी तो वह फोटोकॉपी करवाकर बाँट देता है। वो खरीदता ही नहीं है, इसलिए प्रकाशक तो कोई...

- **अधिकतर ऐसा ही होता है। रंगमंच, दूरदर्शन और फिल्म इन तीनों का अन्तर्सम्बन्ध और इनमें विरोधाभास कैसा-क्या है?**

– विरोधाभास तो नहीं है, थिएटर तो मूल में है, इसी से ग्रो किया है। जैसे साइंस होती है, एटम वहीं से है कि कितने एटम होते हैं। उसका एप्लाइड जो होता है वो एटम बम हो जाता है। उस ज्ञान का एप्लीकेशन करके एटम बम बन जाता है। उसी तरह से मूल ग्रामर तो इस नाट्य-विधा की नाटक ही है न। उसके एप्लाइड ऑस्पेक्ट्स जो हैं वो सिनेमा भी है और टेलीविजन भी है।

- **नाटक में ये सम्भव है...**

– नाटक में ये जीवन्त इन्टरैक्शन है। जैसे मैंने पहले भी कहीं कहा था कि फिल्म में आदमी अपने आकार से बहुत बड़ा दिखलाई पड़ता है, टेलीविजन में अपने आकार से बहुत छोटा दिखलाई पड़ता है, लेकिन थिएटर में एक्टर अपने कद में दिखाई पड़ता है, तो जीवन्त है, लगता है कि ये सच है और फिल्म वाली लगता कि फैण्टेसी है। फिल्में भी धीरे-धीरे कम हो जायेंगी, इसका आग्रह भी धीरे-धीरे कम होगा और शायद एक ऐसा समय आ जाये जबकि लोग फ़िल्म देखना ही छोड़ जाएँ। अभी भी अमेरिका के भीतर लोग फ़िल्में देखने कम जाते हैं और ऑपेरा और थिएटर में लोग जाते हैं। कोई बता रहा था कि तीन-तीन साल के भी टिकिट बिक जाते हैं। क्योंकि थिएटर में जाने का एक तरह का सोशली इवेन्ट होगा, फैशन की जगह गयी, रिस्पेक्टेबिलिटी की बात हो गयी और सिनेमा कॉमनमैन के लिए है। जो बेचारे थिएटर को अफोर्ड नहीं कर सकते वो लोग जाते हैं। जैसे नेटपिलक्स क्या है?

- **भारत भवन में 28अक्टूबर से 02 नवम्बर 18तक छः दिवसीय नाट्य समारोह चल रहा है, आप पर एकाग्र है। उसमें आपको कैसा अनुभव हो रहा है? चूँकि आप भारत भवन से पहले भी जुड़े रहे हैं और अब एक बतौर लेखक, निर्देशक, रंगकर्मी के रूप में आप यहाँ पर आये हैं और ये आपके समग्र रंग-एकाग्र पर केन्द्रित आयोजन हो रहा है तो आपको कैसा फील हो रहा है?**

– मुझे बहुत अच्छा लग रहा है। कुछ ऐसा लगता है न, जब किसी बूढ़े माँ-बाप के जवान बेटे उसको याद करें, सम्मान करें तो उनको जो खुशी होती है वही खुशी मुझे हो रही है। और नाटक सब मेरे पहले से देखे हुए थे क्योंकि ग्रुप करते रहते हैं, लेकिन एक जगह पर हो रहे हैं, समग्र रूप से हो रहे हैं ये अच्छी बात है और दूसरा यह भी है कि बहुत कम लोग नाटक देखते हैं, बहुत अच्छा नाटक है, तुम जानते होंगे। हिन्दी में वाकई में नाटकों का अभाव है।

- **एक सफल लेखक रंगकर्मी, निर्देशक और प्रशासक के अनुभव को लेकर आप क्या कहना चाहेंगे।**

– देखिए तीनों में ही मैं यह कहना चाहूँगा कि हमारे समाज में अभी कला के प्रति वो बोध नहीं है जो विकसित देशों में है। हमारे यहाँ कला और कलाकार दोनों ही स्ट्रगल कर रहे हैं, संघर्ष कर रहे हैं अपना स्थान बनाने के लिए। प्रशासन में भी वो सेन्टीसेटिविटी नहीं है कि वो कला को वो सम्मान दे सके। और कहीं-कहीं, जैसे कि अनुदान, सारा थिएटर मूवमेन्ट! पहले जब हम लोगों ने पाँचवे दशक में 1955-56में शुरुआत की थी तो हम लोग संघर्ष करके नाटक करते थे और दर्शकों को बटोरने की कोशिश करते थे और प्रयत्न करते थे। अब सारा नाटक जो है वो अनुदान पर आधरित हो गया है। इन्तज़ार करते रहते हैं कि अनुदान आये तो नाटक करें। तो एक सरकारी-सा नाटक बन गया है।

- **क्या, उसका अपना खुद का श्रम-संघर्ष कुछ नहीं है।**

– हाँ, श्रम-संघर्ष नहीं है और दूसरा यह है कि कुछ लोग इस दौड़ में, मैं बहुत से लोगों को जानता हूँ जो अनुदान प्राप्त करने की कला

में प्रवीण होते हैं, थिएटर में नहीं होते, कला में नहीं होते, मगर वो भी अनुदान ले लेते हैं और उनको काफी अच्छे अनुदान भी मिलते हैं। कलाकारों को राशि बहुत कम मिलती है।

एक तंत्र है- भ्रष्टाचार का तंत्र। तीसरी चीज़ यह भी है कि जब उनको पैसे की कमी होती है तो वह चाहते हैं कि दो एक्टर का प्ले ले लें, एक एक्टर का प्ले ले लें, अनुदान तो उतना ही मिलना है, अखबार में तो वो ही देना है। फिर वो दो एकटर का ही प्ले लेते हैं।

फोकस इस बात पर है कि किस प्रकार से अधिक से अधिक अनुदान लेकर के उसमें से कितना पैसा बचाया जा सके। फोकस इस बात पर नहीं है कि किस प्रकार से हम अधिक से अधिक दर्शकों को लाकर के थिएटर में हम उनके सहयोग से नाटक करें। ये बहुत बड़ा अन्तर है।

- **युवा नाटककर्मी, अभिनेताओं के बारे में जिन्होंने नाट्य विधा में अपना रिश्ता बनाया है, जो इस थिएटर में आना चाह रहे हैं। उनके बारे में आप क्या कहना चाहते हैं ?उनका क्या भविष्य ?**

- नहीं, हम कुछ नहीं कहना चाहते है। अगर उनके ब्लड में नाटक का जर्म है तो वो तो आएँगे ही। हम कुछ भी कहें, तब भी वो आएँगे।

भविष्य तो कोई नहीं बता सकता कि सफल होंगे या असफल होंगे, लेकिन ये जरूर है कि वो संघर्ष करेंगे।

ये संघर्ष का रास्ता है और हम लाख मना करें कि बेटा कम्पटीशन में चले जाओ, बेटा तुम लेक्चरर हो वही बने रहो, उसके बावजूद भी हम थिएटर में जो नवीन है, अगर उनके ब्लड में नाटक का जर्म है तो इनको कोई नहीं रोक सकता। ये तो संघर्ष करेंगे ही, सफलता और असफलता, वो तो भाग्य की बात है, लेकिन ये फारएवर कन्डेम्ड हैं संघर्ष करने के लिए। सिर्फ एक शब्द है 'स्टेजस्टक'- ये सिर्फ स्टेज की लिस्ट तक मानवता है, थिएटर की लिस्ट तक मानवता है। म्यूजिकास्टक, थिएटरस्टक, स्टोरीस्टक कोई नहीं होता। 'स्टेजस्टक' का मतलब यह है कि आपका तर्कहीन प्रेम है, झुकाव है, आप मुक्त नहीं हो सकते। इललॉजिकल है, तर्कहीन है, बुद्धि का काम नहीं है, आप स्टक हैं तो है। ये बच्चे जो युवा है, अगर ये स्टेज-स्टक है तो इनको कोई नहीं रोक सकेगा। उनके ब्लड में एक बार जर्म पहुँच गया तो ! सफल हों और असफल हों, वो एक अलग बात है। आखिर तक संघर्ष करना होगा। और देखो, थिएटर में कोई रिटायर नहीं होता। थिएटर में आज हीरो बनता है, कल हीरो का बाप बनता है, परसों हीरो का बाबा बनता है। थिएटर कभी किसी को किसी को रिटायर नहीं करता।

- **तो एक निर्देशक के बतौर नाटक तैयार करने से लेकर उसके मंचन तक जो सफलताएँ-असफलताएँ होती है।**

- किसे शेर करें ? अगर असफल हो गया तो हो गया है।

निर्देशक तो बेबी ही है, जब हाल का बच्चा होता है तब नहीं जानते कि क्या होगा, बच्चा कैसा होगा।

एक चीज़ दूसरी तरह से कहूँ, सारी क्रियेटिबिटी तो उसी की है। उसको लोग कहते हैं न, माँ बच्चे को कन्सीव करती है और डिलेवरी तो उसकी दाई करती है या धाय करती है। डिलेवरी तो निर्देशक ही करता है। उसकी बड़ी जिम्मेदारी होती है लेकिन वो- नाटक द्वैत होता था। उसका जन्म ही होता है। पहला जन्म लेखक के दिमाग में होता है और दूसरा जन्म उसको निर्देशक देता है। वो तो दो जन्म होते हैं नाटक के। वो तो निर्देशक की पूरी जिम्मेदारी है और वह परिवर्तन भी करता है, परिवर्धन भी करता है, इन्टरप्रिटेशन बदल देता है।

- **आज कहानी, कविता, उपन्यास को लेकर नाटक तैयार हो रहे है, मूलनाट्य लेखन कर इसके प्रभाव के बारे में बताना चाहेंगे।**

- नहीं, कोई प्रभाव नहीं है। ये सब अलग-अलग रचनाएँ होती रहेंगी।

इस तरह के एफर्ड्स स्कूल-कॉलेज में भी होते रहते हैं। सभी जगह पर कुछ न कुछ होता रहेगा। उससे मूल नाट्य लेखन तो प्रभावित नहीं होता न। मूल नाटक लेखन की आवश्यकता भी प्रभावित नहीं होगी। दूसरी बात यह है कि कोई जरूरी नहीं है कि प्रोज में ही नाटक हो। एक अंग्रेजी का नाटक बड़ा फेमस है 'मर्डर इन कैथेजिल', टी एस इलियट का। वो तो पूरी कविता में ही है। धर्मवीर भारती ने भी कुछ काव्य-नाटक लिखे हैं। और फिर नाटक की तो अनेक विधाएं हैं। अंग्रेजी में तो बहुत सारी विधाएँ हैं, कहते हैं न, ऑपेरा लिखा जाता है। वो म्यूजिकल थिएटर है, ऑपेरा इज म्यूजिकल थिएटर। इसका मतलब यह तो नहीं कि हम थिएटर ! साहित्य के रूप में ऐसा नहीं कही जायेगी, साहित्य के रूप में तो होगी। ये सारे एफर्ड्स बराबर होते रहेंगे और सबके मूल में तो थिएटर ही है न ! उसी थिएटर को आप एप्लाई करके संगीत में, कविता में, जैसा थिएटर आप पसन्द करते हैं। और थिएटर का ये भी मतलब नहीं है कि खाली एक ही प्रकार के नाटक हों। अनेक प्रकार के नाटक थिएटर में हो सकते हैं। उसमें होते रहेंगे।

- **वर्तमान में नाट्य सृजन की क्या स्थिति है, नया कुछ 60-62 साल के नाट्य सफर के बारें में कुछ कहना चाहेंगे।**

- कुछ नहीं कहना है। मैंने तो नाटक बस शौक से लिखा है, दिल से लिखा है और दिल का मामला है जिससे लग जाये।

- **नुक्कड़ नाटक, बाल नाटक और हास्य नाटक भी आपने लिखे हैं। इन तीनों में कैसा अनुभव रहा आपका और आगे भी क्या आप लिखने का सोच रहे हैं ?**

- हाँ लिखे। नहीं, नहीं, अब बच्चों का नाटक नहीं लिखेंगे। क्योंकि ऐसा होता है न, अब बच्चों से हम दूर हो गये, आयु के हिसाब से। नाटक में भी हमने बताया कॉम्प्लीकेशन हैं- पॉलिटिकल और

सोशल और हिस्टोरिकल। दो हजार साल का मैं देखता हूँ, आज अगर हम बात करेंगे, हम सोचने लगेंगे तो यह पहली कब से आई। हमने बड़े फलक पर दुनिया देखी है न, तो बच्चों के नाटक तो नहीं लिखेंगे और नाटक कॉमेडी तो कभी लिख सकते हैं, नहीं भी लिख सकते हैं। कोई सोचकर थोड़ी लिखते हैं कॉमेडी। रचना का प्रोसेस बड़ा कॉम्प्लीकेटेड भी है और बड़ा सिम्पल भी है। आदमी रिएक्ट करता है अपने वातावरण को, तब लिखता है।

- **एक आपसे व्यक्तिगत प्रश्न यह है कि एक प्रशासक के रूप में आप अपने आपको सफल मानते हैं या असफल मानते हैं ?**

– एक सांस्कृतिक प्रशासक के रूप में मैं सफल मानता हूँ। सफल इसलिए मानता हूँ कि लोग मानते हैं। आज भी लखनऊ जाता हूँ तो वो अच्छा ही शब्द बोलते हैं। अपने मुँह से क्या बोलूँ? क्योंकि मैंने नवीन योजनाओं का, इस क्षेत्र में तो कोई था ही नहीं। देखो, सांस्कृतिक प्रशासन बड़ी नयी चीज है इस देश के लिए। अंग्रेजों का प्रशासन जो था वो सिर्फ़ लॉ एंड ऑर्डर मेन्टीनेन्स तक था। ऑर्डर मेन्टेन करें किसी भी हालत में और किसी भी चीज़ पर वो खर्च नहीं करते थे, सिर्फ़ लॉ एंड ऑर्डर मेन्टेन करते थे। क्यों, ताकि यहाँ की रेवेन्यु वसूल कर सकें और इंग्लैण्ड ले जा सकें और उसमें इन्सीडेण्टल जो मजबूरी हो जाये, क्योंकि उनको रॉ मटेरियल लेना है इसलिए उन्होंने रेलवे लाइन बना दिया और हम लोगों ने इस्तेमाल कर लिया। उन्होंने हमारे इस्तेमाल के लिए रेलवे लाइन नहीं बनायी थी। अपने व्यापार के लिए, अपनी सुविधा के लिए उन्होंने किया।

जब हमारा देश आजाद हुआ, तब केवल लॉ एंड ऑडर मेन्टेन नही करना है, खाली इकॉनॉमिक क्राइटेशन नहीं करना है, उसका जनरल वेलफेयर देखना है और जब जनरल वेलफेयर देखना है तब फिर उसके हर प्रकार के शासनों का, उसमें सोशल एडमिनिस्ट्रेशन भी होगा, उसके भीतर बुड्ढे-बच्चों की केयर भी होगी, जिससे मिलते हैं उसकी भी केयर होगी और उसी सिलसिले में आर्ट एंड कल्चर भी उसका महत्वपूर्ण विषय बन जाता है। लेकिन चूँकि परम्परा नहीं है प्रशासन में और प्रशासक भी इसके लिए तो सांस्कृतिक प्रशासन नाम की कोई चीज है ही नहीं। किसी भी लड़की को संगीत नाटक अकादेमी का चेयरमेन बना देंगे, मेम्बर बना देंगे, बैकग्राउण्ड भी न हो और मिलते भी नहीं हैं। कलाकार मिल जाते हैं तो प्रशासन नहीं जानते और प्रशासक मिलते हैं तो कला नहीं जानते। तो ये सांस्कृतिक प्रशासक उत्पन्न करने के कारण की आवश्यकता है। जैसे इण्डियन इंर्फोमेशन सर्विस है, इण्डियन फॉरेस्ट सर्विस है। इसमें इण्डियन कल्चरल सर्विस या इण्डियन कल्चरल हैरिटेज सर्विस की आवयकता है, जो कि नृत्य-संगीत की संस्थाओं को भी देख सकें, जो कि म्यूजियम भी देख सकें, जो कि आर्कियोलॉजी भी देख सकें, जो कि इस तरह के आर्काइब्ज भी देख सकें और जिनको परम्परा का ज्ञान हो, जो स्पेशलाइज काडर की हो और साथ ही जो उसके प्रशासन करने में सक्षम हो।

अब मैं तो एक्सेप्शनल था, चूँकि हमको आर्ट एंड कल्चर आता था इसलिए हमको पोस्ट कर दिया ओर हम भी लगे रहे। हमको लगा कि और कौन जायेगा, कहाँ जायेंगे और आर्ट एंड कल्चर में कोई दूसरा नहीं आना चाहता, तो हम पाँच-सात साल से एक डिपार्टमेन्ट में पड़े हुए हैं तो पड़े हुए हैं। किसी को कोई फिक्र नहीं। अगर हम वो ही सेल्स टेक्स में चले जाते तो साल भर बाद ही या दो साल बाद ही कोई दूसरा हमको कहता कि इनको हटाओ।

इसीलिए लम्बे पड़े रह गये। लेकिन आवश्यकता जरूर है एक सांस्कृतिक प्रशासक के कर्य की, जो प्रशासन भी जाने और हमारी कल्चर हेरीटेज को भी जाने। जरूरी नहीं है कि खुद आर्टिस्ट हो, मगर जिसको परम्परा से कलाओं की विधाओं का ज्ञान हो।

- **आपको कई सम्मान मिले हैं। आप अभी किसी सम्मान की दौड़ में हैं ?**

– नहीं, किसी भी सम्मान की दौड़ में नहीं हूँ। बिना दौड़ के ही सम्मान मिलते हैं तब तो सम्मान है वरना तो पता नहीं।

देखो, अपने आप ही मिलते हैं सम्मान। समझ की बात होती है। कुछ लोग विरोध भी करते हैं, कुछ लोग नहीं भी मिलने देते हैं। बहुत बार यहाँ पर भी विरोध हुआ।

जब समय आता है तो मिल जाता है। किसी की दौड़ में तो नहीं हैं और दौड़ में तो सम्मान, सम्मान ही नहीं रह जाता।

- **आपकी दिनचर्या कैसी-क्या रहती है ?**

– कुछ नहीं, बहुत आलसी आदमी हूँ। देर से सोता हूँ। बारह-एक बजे से पहले कभी नहीं सोता। पढ़ता-लिखता रहता हूँ।

- **वैसे अभी आपका शौक कौन-से हैं ?**

– शौक तो कुछ भी नहीं हैं। चीज़ों में इन्ट्रेस्ट नहीं रख पाते। मेरा हिस्ट्री में बहुत शौक है। मुझे वर्तमान राजनीति में शौक है। विश्व राजनीति में शौक है। मुझे मालूम है कि विश्व बाजार कहाँ जा रहा है, उसका क्या भाव होगा। बहुत से लोग नहीं जानते कि कौन-सी सुनवाई हुई किस रूप में। तो शौक तो मेन्टली ऑक्युपाइड रहते हैं न! अपने घर की चीज़ों के, जैसे कायदे-करीने से ये सब हो जाए, उसका शौक नहीं है मुझे। मेरे इन्टलैक्चुअल शौक ज़्यादा हैं।

- **अब आप किस रूप में अपने को सफल मानते हैं ?**

– सफल, असफल तो नहीं, लेकिन जो मुझे थोड़ा-बहुत यश मिला है, इसे मैं भगवान की कृपा मानता हूँ। क्योंकि जब आप नाटक लिखते हैं तो आप बिल्कुल नहीं जानते कि अच्छा होगा या बुरा होगा, लोग पसन्द करेंगे कि नहीं करेंगे। सभी तो अच्छा लिखने की कोशिश करते हैं न, लेकिन सफल होगा, लोगों को शिरोधार्य होगा, कोई नहीं जानता। मेरा नाटक सफल होगा या हम, इसको तो भगवान की कृपा मानते हें। भाग्य मानते हैं और आदमी के वश में क्या है, कुछ भी नहीं।

■

आलेख

कला समीक्षा का आधार

डॉ. सुशील त्रिवेदी

कला मानव संस्कृति उपज है। मानव ने अपनी प्रकृति से तालमेल बैठाते हुए जो सौंदर्यबोध प्राप्त किया उसकी अभिव्यक्ति कला है। कला और मनुष्य का संबंध अविभाज्य है मानव के द्वारा कला की प्रतिष्ठा की गई और कला के द्वारा मानव ने आत्मचेतना और आत्म गौरव प्राप्त किया। मानव मन में पाशविक विकारों की तीव्रता कम करने में कला का अप्रतिम योगदान है। कला का उद्‌गम सौंदर्य की मूलभूत प्रेरणा से हुआ है। कला की निर्मिति में कलाकार को एक विशिष्ट आनंद प्राप्त होता है और आनंद दान कला का उद्‌देश्य है। कला एक-एक लक्ष्य कौतुहल को पूरा करना है।

कला का उपयोगी कला और ललित कला से विभाजन किया गया है। उपयोगी कला व्यवहार जनित और सुविधा भोगी है जबकि ललित कला मन के संतोष के लिए और विशिष्ट मानसिक सौंदर्य की योजना है। कला की इन दोनों रूपों का साथ-साथ विकास हुआ है। कलाएं अनेक हैं। काव्य, संगीत, चित्र, नाट्य इत्यादि कला के प्रकार हैं। किंतु इन कलाओं में परस्पर संबंध रहता है। संगीत में स्वर प्रधान है, काव्य में शब्द परन्तु श्रेष्ठ काव्य में गेयता का महत्व है। संगीत स्वतंत्र कला है परंतु उसमें शब्द शासक होता है। चित्रकला की भाषा, रंग या रेखा है तो वांग्मय में शब्द चित्रों का महत्व है। शिल्प को तो मूक काव्य ही कहा जाता है।

माना गया है कि समग्र चेतना को सत्यम्-शिवम्-सुंदरम् के सूत्र में बांधा जा सकता है। कला ज्ञान और नीति से पुष्ट होती है। कला समीक्षा का अर्थ है किसी कला रूप के संबंध में सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना और उसके प्रत्येक तत्व का विवेचन करना। कला के स्वरूप, उसके विविध अंगों, उसके गुण-दोषों आदि का सम्यक् विवेचन करना कला समीक्षा है। हम यहां कला के प्रमुख्या रूपों की चर्चा करेंगे-

संगीत

गायन, वादन और नर्तन को संगीत कहते हैं। गायन और नर्तन की प्रवृत्ति उतनी ही पुरानी है जितना पुराना मानव है। वादन की कला मानव ने बाद में खोजी। कुछ नृशास्त्री यह मानते हैं कि मनुष्य ने बोलना सीखने के पहले नृत्य करना सीख लिया था।

आनंद से भरकर नाचने लगना, गाने लगना या बजाने लगना- एक अत्यंत प्राचीन प्रवृत्ति है किंतु कला के रूप में उसका विकास कुछ हजार साल पहले ही हुआ है। आनंद और उल्लास की बहती हुई धारा को कला की ऊंचाई तक पहुंचने में समय और साधना की आवश्यकता होती है। निरंतर अभ्यास से कला सधती है और सीमाओं में बंधती है। जब हम एक राग स्वर को एक ही रूप में एक मान विस्तार में गाते हैं तब वह राग या स्वर की संज्ञा कला होती है। एकाएक गा उठना किसी भी आदिमानव की प्रवृत्ति रही किंतु सभ्यता के विकास के साथ उसे अभ्यास के द्वारा कला बना लेता है।

शास्त्रीय संगीत

भारतीय संगीत या गायन के वैसे तो अनेक भेद हैं पर यहां हम प्रधानत: दो-तीन की चर्चा करेंगे। वास्तव में ये भेद दो ही प्रकार के हैं- मार्ग और देशी। मार्ग शास्त्रीय गायन को कहते हैं, देशी साधारणत: लोकगीतों को।

मार्ग या शास्त्रीय संगीत को ही 'क्लासिकल म्यूजिक' या संगीत भी कहते हैं। जैसा ऊपर कहा जा चुका है यह ध्वनि-प्रधान होता है, शब्द-प्रधान नहीं। इसमें महत्व ध्वनि का होता है, उसके चढ़ाव-उतार का, शब्द और अर्थ का नहीं। इससे अनेक लोग स्वाभाविक ही ऊब भी जाते हैं। इस ऊबने का कारण उस संगीतज्ञ की कमजोरी नहीं, लोगों की जानकारी की कमी है। जिस कला का अनेक वर्षों तक रोजमर्रा घण्टों गायक अभ्यास करता है, स्वर साधता है, निश्चय वह अब संगीत का एक प्रकार का व्याकरण बन गया है और उसका व्याकरण या प्रतीक समझे बगैर उसका स्वाद पा सकना निस्संदेह कठिन है। पर इससे शास्त्रीय संगीत का मान नहीं घटता।

शास्त्रीय या मार्गीय संगीत-शैली की इस देश में आज हजारों साल से साधना होती आई है, कम से कम सामवेद आदि के वैदिक काल से। और सामवेद की वैदिक पद्धति तो केवल आर्यों की शैली है। पर दक्षिण का द्राविड़ राग-निधान तो उससे परे का ही रहा होगा, शायद उससे भी पुराना। आज जो संगीत दक्षिण में प्रचलित है वह भी वैसे उत्तर भारतीय ही है, शास्त्रीय ही, यद्यपि उसमें दक्षिण का अपना व्यापक योग भी है। प्राचीन- कम से कम दो हजार साल प्राचीन- तमिल साहित्य में भी दक्षिण के स्वतंत्र गायन के संकेत मिलते हैं।

उत्तर भारत की संगीत शैली को हिन्दुस्तानी और दक्षिण भारत की शैली को कर्नाटकी कहते हैं। संगीत की रक्षा और प्रचार अनेक आचार्यों ने किया है और इन्हीं आचार्यों के अनुसार घराने बन गए हैं।

हर राग में स्वरों का समाहार होता है। ये स्वर कुल 12 हैं

और इस आधार पर 22 श्रुतियां हैं।

आधुनिक राग 10 प्रकार के हैं- इमान, बिलावल, खमाज, भैरों, पूरवी, मरवा, काफी, आसावरी, भैरवी और टोड़ी। प्राचीन परंपरा के अनुसर छः राग हैं- भैरवी, श्री, मालकौस, दीपक, मेघ और हिन्दोल। इन रागों के अतिरिक्त छत्तीस रागिनियां हैं। ये राग अलग-अलग प्रहर में गाए जाते हैं। विशेष अवसर और काल, ऋतु आदि के विशेष राग होते हैं।

ब्रज भाषा में रचे गए गीतों के आधार पर निर्मित ब्रज रागों में ध्रुपद, ख्याल और होली और धमाल सम्मिलित हैं। इनके अलावा, ध्रुपद के उत्तराधिकारी के रूप में ख्याल है। ध्रुपद और ख्याल से भिन्न टप्पा है।

देशी संगीत

देशी संगीत, शास्त्रीय संगीत के साथ चलता रहा है। इनमें ठुमरी, दादरा, ग़ज़ल, कव्वाली, कीर्तन और भजन शामिल है।

लोकगीत

लोकगीत अपनी लोच, ताज़गी और लोकप्रियता में मार्गी और देशी दोनों प्रकार के संगीत से भिन्न हैं। लोकगीत सीधे जनता के संगीत है। घर, गांव और नगर की जनता के गीत हैं ये। इनके लिये साधना की जरूरत नहीं होती। त्योहारों और विशेष अवसरों पर ये गाये जाते हैं। सदा से ये गाते रहे हैं और इनके रचने वाले भी इनकी रचना में विशेष भाग लिया करते है। ये गीत, वाद्य यंत्रों की मदद के बिना ही या साधारण ढोलक, झांझ, करताल, बांसुरी आदि की मदद से गाये जाते हैं।

मार्गी या देशी के सामने इनको हेय समझा जाता था। अभी तक इनकी बड़ी उपेक्षा की जाती थी पर इधर इनकी लोकप्रियता बढ़ी है। प्रायः हर क्षेत्र और हर बोली के अपने अलग लोकगीत होते हैं और आमतौर पर घरों में उत्सव, जन्म से लेकर विवाह तक के संस्कारों और अन्य आयोजनों पर ये गाये जाते हैं।

वादन

वादन का संबंध गायन और नृत्य दोनों से है। भारतीय वाद्यों को चार भागों में बांटा गया है- तात, बेतात, घन और सेखर। तात, तारों वाले वाद्य हैं जैसे- वीणा, सरोद, सितार। बेतात, भी तार वाले होते हैं किंतु उनमें तार के नीचे चमड़ा लगा रहता है जैसे- सारंगी, दिलरूबा। इन्हें उंगलियों से न बजाकर धनुष से बजाते हैं। घन, भारी आवाज वाले बाजे हैं जैसे- तबला, मृदंग, पंखावज, ढोल। सेखर वाद्य फूककर बजाए जाते हैं जैसे- बांसुरी, शहनाई। इनके अलावा खजरी, ढपली, डमरू आदि प्रचलित हैं।

नर्तन

नर्तन मनुष्य के लिए एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। नृत्य तो गायन से भी पुराना है। प्राचीन वेदों तक में उल्लेख मिलता है। शास्त्रीय नृत्यों में उत्तर भारत में कथक प्रचलित है तो दक्षिण भारत में भरतनाट्यम्, कुचिपुड़ी, कथकली, मोहिनीअट्टम, उत्तर-पूर्व में मणिपुरी, ओडिसा में ओडिसी प्रचलित हैं।

जहां तक लोकनृत्यों का प्रश्न है, भारत के हर क्षेत्र में भौगोलिक परिस्थिति के अनुसार लोकनृत्य होते हैं।

चित्रकला

जिस तरह नर्तन और गायक मानव की मूल प्रवृत्ति रही, उसी तरह मानव सभ्यता में चित्रांकन का महत्व रहा है। आदिमानव ने अपने आस-पास जो कुछ देखा और जो उसके मन का उत्साह था, वह अपनी गुफा की दीवारों पर अंकित करता था। इस लिहाज से भीम बैठका जैसे शैलाश्रयों में बने चित्र हमारी चित्रकला के आदि स्वरूप को अभिव्यक्त करते हैं। फिर इनका विकास भित्तिचित्र के रूप में हुआ जिसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण अजंता और बाघ की गुफाओं में बने चित्र हैं। बाद में विभिन्न क्षेत्रों में चित्रकला ने धर्म के माध्यम से अपनी अलग पहचान बनाई।

चित्रकार अपनी कल्पनाशक्ति, विचार और वास्तविकता का अंकन चित्रों में करता है। इनमें भी क्षेत्र का अलग प्रभाव देखा जा सकता है। अजंता के भित्तिचित्र एक आदर्श प्रस्तुत करते हैं। राजपूत शैली, कांगड़ा शैली और मुगल शैली का विकास भारतीय संस्कृति की अनन्यता को प्रदर्शित करता है। अंग्रेजों के जमाने में पश्चिम कला की आवाजाही से आधुनिक भारतीय शैली का विकास हुआ। इसी के साथ ही बंगाल की शैली और दक्षिण की शैली अलग-अलग विकसित हुई।

यह भी उल्लेखनीय है कि धर्म पर आश्रित चित्रकला अलग से विकसित होती रही, विशेषकर जैन और बौद्ध चित्रकला।

शिल्प

चित्रकला के साथ-साथ प्रतिमा निर्माण होने लगी और वह शिल्पकला के रूप में विकसित हुआ। धातु, पत्थर और लकड़ी पर कला का रूप उभरकर आने लगा। चित्रकला से प्रेरित होते हुए भी शिल्पकला ने अपना एक अलग महत्वपूर्ण स्थान बनाया है।

नाट्यकला

काव्य को सबसे श्रेष्ठ कला माना गया है। कथा महाकाव्य आदि का पठन-पाठन करने से तब रसास्वाद होता है जब उसमें नाटकत्व का आभास हो। कथा, कहानी और महाकाव्य के पात्र जब सजीव पात्र के रूप में अभिनय करते हैं तब पूर्ण काव्य रस की उपलब्धि होती है। भरतमुनि ने नाटक को पांचवा वेद कहा है जो तीनों लोकों के भावों का अनुकरण करता है। माना जाता है कि मानव समाज में नाट्य कला की उत्पत्ति उस दिन हुई जिस दिन किसी बालक ने खेल-खेल में अपने आप को किसी अन्य व्यक्ति के रूप में कल्पित किया। वैदिक काल से लेकर नाटक की परंपरा चल रही है। रामायण और महाभारत में भी नाटक का संदर्भ है। नाटक लोक में बहुप्रचलित है। रामलीला, रासलीला, जात्रा आदि से होकर नौटंकी, स्वांग तक इसका फैलाव है। आधुनिक भारत में लेखकों ने अनेक नाटकों की

रचना की है जो बहुत लोकप्रिय है।

नाटक में काव्य कला, नर्तन, वादन, गायन, चित्रकला, शिल्पकला आदि कलाओं का समावेश रहता है। नाटक में साधारणीकरण की धारणा तो काव्य की प्रमुख धारणा है।

कला समीक्षा के लिए कुछ विचार :

1. संबंधित कला के इतिहास, उसके विविध रूपों और उसके कलाकारों की विशेषता संबंधी अध्ययन करें।
2. कला प्रदर्शन के कार्यक्रम में लगातार उपस्थित होकर उसके रस को ग्रहण करने का अनुभव करना।
3. संबंधित कला के व्याकरण और अनुशासन को जानकर उसके प्रयोग को समझने का प्रयास करें।
4. कला के रूप से आनंद की अनुभूति करें- सहज रूप में।
5. आप कला विशेषज्ञ नहीं है, आप कला के रस ग्राहक हैं और इस रस ग्रहण की प्रक्रिया को सहज रूप में होने दें।
6. इस रस ग्रहण की प्रक्रिया में हुई आनंद की अनुभूति को अभिव्यक्त करें।
7. अभिव्यक्ति के लिए भाषा में शालीनता और गंभीरता को बनाए रखना आवश्यक है।
8. अपनी भाषा और शैली को कलारूप के व्याकरण के अनुरूप दिशा दें।
9. कला प्रदर्शन पर जानेमाने अन्य कला विशेषज्ञों द्वारा की गई टिप्पणियों और प्रकाशित अन्य लेखों का अध्ययन करें।

- क्यू-3, श्रीरामनगर, फेज़-2, शंकरनगर, रायपुर-492007
मो. 9826144434

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

पत्रिका मुफ्त मांग कर, कृपया हमारे अनुष्ठान को आघात न पहुँचाएं

'कला समय' के सदस्य बनें- ❍ पत्रिका की वार्षिक/द्वैवार्षिक /आजीवन सदस्यता ग्रहण करें। सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, ड्राफ्ट, ऑनलाइन अथवा व्यक्तिगत रूप से भुगतान किया जा सकता है।

'कला समय' की एजेंसी के नियम- ❍ आपके गांव, कस्बे, शहर में सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की एजेन्सी के लिए सम्पर्क करें। ❍ कम से कम दस प्रतियों से एजेन्सी शुरू की जायेगी। ❍ पत्रिका कुरियर अथवा रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। डाक खर्च एजेन्सी को वहन करना होगा। ❍ कमीशन, प्रतियों की संख्या के आधार पर।

स्थायी तथा सम्पादकीय पता और दूरभाष क्रमांक के साथ सम्पर्क करें- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 Email : bhanwarlalshrivas@gmail.com मो. 9425678058, 0755-2562294

लेखकों/कलाकारों से ❍ कला-संस्कृति के अछूते पहलुओं पर सर्जनात्मक, शोधात्मक और सूचनात्मक आलेख, टिप्पणियां, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, ललित निबन्ध, कविताएँ, छायाचित्र, रेखांकन तथा शोध आमंत्रित हैं। ❍ रचनाएँ कागज के एक ओर टाइप की हुई, अथवा सुवाच्य लिपि में अंकित हों। कृपया रचना के साथ पर्याप्त डाक टिकिट लगा लिफाफा भी संलग्न करें। रचनाएँ और चित्र ई-मेल से भी भेज सकते हैं।

प्राथमिकता के साथ : Chanakya फोंट / वर्ड फाइल / PDF फॉर्मेट में ही भेजें।

अनुरोध : वे सदस्य जिनका वार्षिक / द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क समाप्त हो रहा है, कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करायें।

-संपादक

जब हम अच्छा खाने, अच्छा पहनने और अच्छा दिखने में खर्च करते हैं
तो अच्छा पढ़ने-लिखने और सोचने-समझने की खुराक में खर्च क्यों न करें !

कला समय

प्रबंध संपादक

सम्पर्क- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058

ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com

संस्मरण

श्री अशोक वाजपेयी के जन्मदिन पर... (16जनवरी 1941)

ऐसी ही मीठी यादों के सहारे कट रही है जिन्दगी

मुकेश कुंदन थॉमस

(एक अनन्य व्यक्तित्व - जैसा मैं उन्हें जानता हूँ)

साहित्य, संस्कृति और कला से जुड़ा ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो श्री अशोक वाजपेयी को न जानता हो, वे भारतीय प्रशासनिक सेवा के जितने उत्कृष्ट अधिकारी, विख्यात कवि-आलोचक और कालजयी संस्कृति कर्मी रहे हैं और उससे कहीं ऊपर वे एक प्रखर और ओजस्वी वक्ता और लेखक हैं। उन्हें सुनना एक अद्‌भुत बौद्धिक अनुभव से भीगकर गुजरना है, शब्दों, विचारों, उद्धरण और बौद्धिक और विनोदपूर्ण भाषा शिल्प से वे शब्द और साहित्य का ऐसा मधुर संगीत रचते हैं कि आप उसमें रमे और खोए बगैर न रह पाएँगे, ये सम्भव ही नहीं कि आपकी नज़र घड़ी पर बार-बार जाए बल्कि इसके उलट आप मन ही मन ये चाहेंगे कि कहीं वे अपनी बात जल्द समाप्त न कर दें। आप उनकी भाषा शुद्धता, शब्द और वाक्यों की शान, कहीं-कहीं उर्दू का बेहद सटीक और लुभावना लगाव ओर विषय पर उनकी मजबूत पकड़ के मुरीद हो जाएंगे पर..... मुझे याद नहीं है कि कभी उन्होंने अपने किसी भी सम्बोधन अथवा वक्तव्य में संस्कृत श्लोकों का इस्तेमाल किया हो।

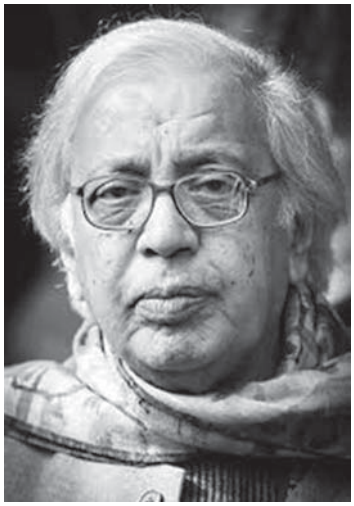

खैर, ये मेरी कुव्वत और सामर्थ्य से परे है कि मैं उनके साहित्यिक व्यक्तित्व और रचनाकर्म पर एक वाक्य भी कह सकूँ पर आज जो बातें मैं करने जा रहा हूँ वे मेरे निजी अनुभव, ऑब्ज़र्वेशन, भावनाएँ और उद्‌गार हैं जिनके बारे में सामान्य जन को शायद कम ही पता हो और ये भी हो सकता है कि अधिकांश लोग मेरी इन कुछ बातों से अनभिज्ञ हों।

मुझे ये कहने में कोई हिचक नहीं कि वे विश्व के हिंदी और अंग्रेज़ी के श्रेष्ठ वक्ताओं में से एक हैं। उनकी वाक् शैली में बला का सम्मोहन है और जिन्होंने उन्हें अब तक नहीं सुना है तो उनके लिए अब भी समय है अपने जीवनकाल के अनुभवों में, एक अनन्य अनुभूति को जोड़ने का नि:संदेह ज़िन्दगी का सर्वाधिक समय उन्होंने पढ़ने-लिखने और कला और साहित्य से जुड़े कार्यक्रमों को देखने-सुनने में बिताया है। अगर आपको ध्यान हो तो रवीन्द्र भवन में पहली पंक्ति में नहीं बल्कि मंच के बीच की रेखा में सभागार की डी यानी चौथी पंक्ति में बैठना उनकी और उनकी धर्मपत्नी प्रसिद्ध नृत्यांगना श्रीमती रश्मि वाजपेयी की खास पसंद थी क्यों ?

इसलिए कि वे स्वयं को सामान्य श्रोता या रसिक ही समझते थे और उसी सहजता में कार्यक्रम का आनन्द लेना चाहते थे और दूसरा ये कि वे ऑय लेवल (अर्थात कलाकार और देखने वाले की आँख का लगभग समान ऊँचाई पर होना) पर कला प्रदर्शनी को देखना-सुनना चाहते थे, ये तकनीकी बात हो सकती है उन लोगों की समझ से बाहर हो जो पहली पंक्ति में बैठने में गर्व और प्रतिष्ठा अनुभव करते हैं।

सन् 1970 के दौर में जब मध्य प्रदेश विशेष रूप से भोपाल में शास्त्रीय संगीत-नृत्य, रूपंकर कला, कविता, साहित्य और रंगकर्म आम व्यक्ति या उनसे ऊपर के बुद्धिजीवी कहे जा सकने वाले अधिकांश लोगों की प्राथमिकताओं और सरोकारों में शामिल न था। अशोक जी ने मध्य प्रदेश में लोक, नागर, शास्त्रीय संगीत-नृत्य, रंगकर्म, कला और संस्कृति तथा हमारी पारम्परिक धरोहर के संरक्षण और प्रचार-प्रसार की उर्वर भूमि तैयार की, उसे रोपा, सींचा, विभिन्न अकादमियों, परिषदों, सृजन पीठ और भारत भवन की स्थापना का सुकर्म किया। कला क्षेत्र से जुड़े लोगों और इनमें रुचि रखने वालों के लिए प्रशिक्षण, प्रोत्साहन, राज्य और राष्ट्रीय सम्मान और कला आस्वाद के हजारों अवसर जुटाते हुए उन्होंने एक के बाद एक उच्च कोटि के राष्ट्र और विश्व स्तरीय आयोजनों की कतार लगा दी जिसमें 'उत्सव', कवि भारती, 'विश्व कविता समारोह', 'कविता एशिया', अन्तराष्ट्रीय स्तर के 'खजुराहो समारोह' 'राष्ट्रीय रामायण महोत्सव' विशेष उल्लेखनीय हैं। उन्होंने अपने जीवनकाल में एक अद्‌भुत संस्कृति कर्मी, आयोजक, मार्गदर्शक और परिकल्पक के रूप में जितने समारोहों और कार्यक्रमों का आयोजन किया वो अविश्वसनिय लग सकता है और ये भी सम्भव है कि उनकी संख्या के बारे में वे स्वयं अनभिज्ञ हो पर मेरे अनुमान से भोपाल में उनके कार्यकाल के लगभग 20-25 वर्षों में उन सब कार्यक्रमों की संख्या कम से कम 3 हज़ार से ऊपर होनी ही चाहिए। क्या आपको लगता है अगर इसे थोड़ा कम भी मान लें तो भी ये एक विश्व रिकॉर्ड होगा ?

ये सब जानते हैं कि उन्होंने साहित्य और कविता पर केन्द्रित कितने विराट समारोह आयोजित किए हैं पर अपने ही समारोह में

उन्होंने खुद कभी कविता पाठ किया हो ये कभी किसी ने नहीं देखा। दिल्ली चले जाने के बाद वे अक्सर विभिन्न संस्थाओं द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में मुख्य अतिथि के रूप में या फिर कविता पाठ के लिए भोपाल आमंत्रित किए जाते रहे, मैंने उन्हीं कार्यक्रमों में उनका कविता पाठ सुना। भोपाल में उनका प्रवास और कार्यकाल कला और संस्कृति के क्षेत्र में नवजागरण, पुनर्स्थापना और नवोन्मेषी क्रिया-कलाप का स्वर्णिम काल था। मैं कह सकता हूँ कि उत्सव 73 से सही मायनों में शास्त्रीय संगीत और नृत्य सभाओं के प्रति मेरी रुचि जागृत हुई और धीरे-धीरे में इसकी गिरफ्त में आता चला गया। मुझे कार्यक्रम सुनने और सिर्फ कलाकारों से ही मतलब होता था तो ये जानने की कभी जरूरत नहीं समझी कि ये अधिकारी कौन हैं प्रदर्शनकारी, शास्त्रीय संगीत-नृत्य और रूपंकर कलाओं के समागम राष्ट्रीय स्तर के 'उत्सव' ने ऐसा रंग जमाया कि भोपाल का रसिक वर्ग इस समारोह का हर वर्ष बेसब्री से इंतज़ार करने लगा।

रवीन्द्र भवन के मुक्ताकाश मंच पर आयोजित होने वाले इस भव्य समारोह के लिए रसिकजन महीनों पहले तैयारी किया करते कई लोग 7 दिन के उत्सव के लिए सात अलग रंगों और अंदाज़ के कुरते भी सिलवाया करते थे। सीज़न टिकिट पा लेना और सामने की दीर्घा में बैठना रसिकों की प्रतिष्ठा का प्रश्न बन चुका था। 2, 3 और 5 रुपयों के प्रतिदिन के टिकिट हुआ करते थे, सीजन टिकिट (शायद 20 या 30 रुपए) समारोह शुरु होने से पहले ही बिक जाते थे, मैं उन दिनों विद्यार्थी ही था हमारी इतनी हिम्मत कहाँ कि 20-30 रुपए का सीजन टिकिट खरीद पाते लिहाजा, सबसे सस्ते टिकिट से काम चलाना पड़ता और इससे मुझे कभी शिकायत भी न हुई। पीछे से भी कार्यक्रम देखने-सुनने में मुझे आनन्द आता था। बाद के वर्षों में ये मेरी आदत बन गयी कि जिन कार्यक्रमों को मैंने मन और चाव से देखना चाहा वे सभी कार्यक्रम मैंने बालकनी या सबसे पीछे की पंक्तियों में कम से कम व्यवधान वाली जगह पर अकेले बैठकर देखे और सुने।

सबसे सस्ती और सबसे पीछे दो रुपये वाली दीर्घा के द्वार पर टिकट चेक करने वालों में एक-दो काली भेड़ें (Black sheep) भी थी जो रुपए लेकर लोगों को अन्दर आने देतीं थीं।

मुझे याद है उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ का शहनाई वादन था टिकटें ख़त्म हो चुकी थीं। कोई बात नहीं भीतर से न सही बाहर लगे चोंगे से ही सुन लेंगे यही सोचकर मैं पिछली दीर्घा के प्रवेश द्वार के करीब लाऊड स्पीकर के पास खड़ा हो गया। इतने में वो साहब जिन पर 2 रुपए श्रेणी की दीर्घा द्वार की रखवाली का ज़िम्मा था मेरे पास आए और पूछा- देखना है क्या ?

मैंने कहा- हाँ, तो वो भाई कहने लगे एक रुपया दो।

मैंने पूछा- क्यों ? उसने कहा- तो ठीक है रहने दो।

मैंने सोचा..... पता नहीं उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ को कब सुनना नसीब हो...

मैंने कहा- ले भैया ले। तो साहब... ऐसे मैंने उस दिन, एक रुपया देकर उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ की शहनाई सुनी।

श्री अशोक वाजपेयी, भोपाल में टिकिट खरीद कर कार्यक्रम देखने के लिए श्रोताओं को मजबूर करने का साहस करने वाले और इस स्वस्थ परम्परा को शुरु करने वाले पहले अधिकारी और आयोजक रहे हैं। समय का कठोरता के साथ पालन और श्रोता-दर्शकों को समय से आने के लिए प्रेरित करने का सम्पूर्ण श्रेय उन्हें जाता है। वे स्वयं हमेशा टिकिट खरीद कर कार्यक्रम देखते थे इस लिए फ्री-पास जैसी चीज माँगने और चाहने वाले लोग उनके पास नहीं फटकते थे। गेट पर सब लोग मुस्तैदी से काम कर रहे हैं या नहीं इसको भी वे टेस्ट करते थे। कई बार ऐसा हुआ कि उनको जानने के कारण बगैर टिकिट चेक किए उन्हें पंडाल के अन्दर आने दिया गया हालांकि उनके पास सीज़न टिकिट हमेशा होता था। ऐसे ही एक मर्तबा सीज़न और 5 रुपऐ वाली दीर्घा में वे बगैर टिकिट दिखाए अन्दर आने लगे तो गेट पर तैनात कर्मचारी ने उन्हें रोक दिया और उनसे टिकिट दिखाने की माँग की।

वाजपेयी साहब ने उससे कहा- मुझे नहीं जानते ?

उसने कहा- सर, मैं आपको जानता हूँ आप हमारे साहब हैं पर मुझे निर्देश है कि मैं बगैर टिकिट देखे किसी को अन्दर न जाने दूँ क्षमा कीजिए...

मैं अपनी ड्यूटी कर रहा हूँ सर।

बाद में अशोक जी ने उस कर्मचारी को बुलाया, उसे शाबाशी दी और उसे पुरस्कृत भी किया। इस घटना का मैं गवाह तो नहीं हूँ पर लोगों से ऐसा ही सुना था।

कार्यक्रम या समारोह कैसे किया जाए इस बात को अशोक जी ने जिस बारीकी से समझा और उसे जिस तरह अमल में लाते हुए अपनी टीम को सिखाया इसकी मिसाल दी जाती है। वे सब तौर-तरीके पूरे विभाग में आज भी सफलता और संतोषपूर्वक उपयोग में लाए जा रहे हैं। उनके लिए समारोह से जुड़ी हर बात बहोत मायने रखती थी। समारोह का आयोजन कैसे होगा इसके आरम्भ से लेकर समापन तक का दृश्य पहले वे अपने दिमाग में आयोजित करते थे।

कलाकारों का समय से निमंत्रण भेजा गया या नहीं, सबकी स्वीकृति आ गयी ? श्रोताओं को निमंत्रण पत्र गए ? पोस्टर छपे, पोस्टर लगे, विज्ञापन गया ? प्रेस नोट गए ? स्मारिका कब तक तैयार होगी ?

कौन कब आ रहा है इसकी जानकारी वे यथासमय चाहते थे। कलाकार कहाँ रुकेंगे, कैसे आऐंगे, कब जाऐंगे, उन्हें लेने कौन जा रहा है, कौन छोड़ने जाएगा, कलाकारों को उनके प्रदर्शन के लिए ज़रूरी चीज़ों की तैयारी है या नहीं ?

क्या-क्या हो, क्या बिलकुल न हो, मंच कैसा हो, मंच पर क्या-क्या होना चाहिए, पानी ग्लास ढंके हों, साउंड ऑपरेटर कैसे काम करे। माइक सेट करते समय चूं-चां-कच-पछ की आवाज़ नहीं आना चाहिए,

ध्वनि, साज़ और गायक की आवाज़ का बेलैंस ठीक है या नहीं। मंच पर कलाकार के अलावा किसी और व्यक्ति का प्रवेश वर्जित था। साज़ उठाने- रखने वाले लोग वर्दी में हैं या नहीं। वे मंच पर कब जाऐंगे, किस विंग से जाऐंगे और स्टेज के किस विंग से लौटेंगे ये काम ड्रिल की तरह होना चाहिए। मंच की चादरें साफ और सिलवटें रहित हैं या नहीं, कचरे का एक तिनका भी उन्हें गँवारा न था, कहीं पर्दा फटा तो नहीं है ? कहीं जाले तो नहीं हैं ? बैनर, निमंत्रण पत्र, स्मारिकाओं में फ्रूफ की कहीं गलती तो नहीं है ? कलाकारों की विदाई के बाद उन्हें फोटो और पेपर कटिंग के साथ समय से आभार पत्र भेजा गया या नहीं ? मात्रा, हलन्त, योजक, शिरोबिंदु, चन्द्र बिंदु, हाइफन आदि मानक हिंदी की वर्तनी शुद्धता पर वे बड़ी पैनी नज़र रखते थे। एक बार किसी लिखे को देखा नहीं कि वे तुरन्त गलती पकड़ लिया करते थे।

विभग के लोग उनकी इस तीक्ष्ण दृष्टि से भली-भांति परिचित थे। एक टाइपिस्ट द्वारा की गई हाइफ़न की गलती पर हमने उन्हें बरसते देखा है। (मैं डर रहा हूँ अशोक जी मेरे इस वृतान्त को पढ़ते समय वर्तनी और भाषा की कई गलतियाँ निकाल देंगे इसलिए मुआफी की प्रत्याशा में अभी से क्षमा माँग लेता हूँ)।

उद्घोषक कौन होगा ? उद्घोषक क्या बोल रहा है, कैसे बोल रहा है, उसकी उद्घोषणा स्तरीय और गरिमा के अनुरूप है या नहीं ये उनके लिए सर्वाधिक महत्व की बात थी क्योंकि वे मानते थे अगर समारोह गरिमा और उत्कृष्टता के साथ सम्पन्न तो सब सफल।

ग़लत उच्चारण, भाषा और उसके सौन्दर्य की अनदेखी, राग-ताल, जीवन परिचय और प्रस्तुति विवरण की त्रुटियाँ उनके लिए बहोत मायने रखती थीं। कान धरकर एक-एक शब्द वे सुनते थे, वे अच्छी तरह समझते थे उद्घोषक कार्यक्रम में भले ही चार चाँद न लगाए पर जितना कहे, जो कहे वो ठीक, प्रभावपूर्ण और गरिमामय हो। वे समझते थे कि कितने ही अच्छे कलाकार क्यों न हों, कितना ही भव्य मंच क्यों न हो, उद्घोषक की एक छोटी सी गलती किसी कलाकार का मूड खराब कर सकती है, श्रोताओं को अप्रसन्न और विचलित कर सकती है, किसी के सम्मान और समारोह तथा आयोजक की गरिमा और प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचा सकती है।

ये बात सब उद्घोषक मित्र जानते हैं कि उद्घोषक ने कार्यक्रम ठीक से संचालित किया तो बिरले लोग ही उसे सराहते हैं पर भूल से अगर एक भी ग़लती हो जाए तो वो लोगों को याद रह जाती है।

अशोक जी उद्घोषक को.... समारोह की जान और उद्घोषणा कार्य को कला और बहोत बड़ी ज़िम्मेदारी की बात मानते थे क्योंकि वे स्वयं उद्घोषणा करना जानते थे। उनसे बेहतर होस्ट, साहित्य गोष्ठी या परिसंवाद संचालक, Key note speaker या सूत्रधार मैंने आज तक नहीं देखा।

1983 में अन्तरंग भारत भवन में पण्डित राजा भैया पूछवाले की स्मृति में दो दिवसीय संगीत समारोह का आयोजन हुआ था। उस समारोह में पहली बार मुझे अशोक जी ने सुना, समारोह समापन के उपरान्त बालासाहब पूछवाले और भाग लेने वाले सभी कलाकार और श्रोता अन्तरंग से बाहर निकलकर बात कर रहे थे। मैं वागर्थ के सामने पेड़ के नीचे चबूतरे पर खड़ा था तभी अशोक जी की मुझ पर नज़र पड़ी और उन्होंने दूर से कहा- आप ही अनाउंसमेंट कर रहे थे ?

मैं उनके क़रीब गया और मैंने कहा- जी सर।

उन्होंने पूछा- क्या करते हैं आप ?

मैंने कहा- सर... मैं बेरोज़गार हूँ।

उसके बाद लेगों के उस समूह के बीच उन्होंने खुलकर मेरी तारीफ और हौंसला अफज़ाई की। तेरी जय हो प्रभु मैंने ईश्वर को धन्यवाद दिया प्रशंसा में कहे उनके शब्दों को अगर मैं ख़ुद ही दोहराऊँ तो यह शोभनीय न होगा।

वाजपेयी साहब से ये मेरी पहली व्यक्तिगत भेंट थी और उनके द्वारा की गई पहली और आखिरी तारीफ, मैं उनका हूँ ऐसा अत्यंत स्नेह रखते थे वे मुझसे। मुझे लोग बताते थे कि अशोक जी बड़े गर्व से तुम्हारी तारीफ करते हैं और कहते हैं 'मुकेश मेरी खोज है' उन्हें मैं इतना ही कह पाता था कि ये मेरा सौभाग्य है और मैं उनके स्नेह और मुझ पर अधिकार के लिए उनका सदा आभारी हूँ।

मैंने शुरुआत के एक दो कार्यक्रम से ही ये समझ लिया था कि उनका मेरे प्रदर्शन पर कभी कुछ न कहने का मतलब क्या है। मुझे गर्व है कि उनकी उपस्थिति में मुझे अपने जीवन के सर्वाधिक कार्यक्रमों की उद्घोषणा करने का सौभाग्य मिला। अगर मुझे अपनी जिन्दगी में किसी महानुभाव को सैकड़ों बार सुनने, पढ़ने और उनसे सीखने का अवसर मिला है तो वे श्री अशोक वाजपेयी ही हैं। मुझमें भाषा और कविता के प्रति मोह उन्हीं के कारण उत्पन्न हुआ। वे मेरे सर्वाधिक प्रिय और प्रेरक कवि भी हैं।

यूँ मैं विज्ञान का विद्यार्थी रहा हूँ पर अपनी मातृभाषा हिंदी के प्रति मैं हमेशा सचेत रहा जिसका श्रेय मेरे माता-पिता और आकाशवाणी को जाता है पर यदि मैं अशोक जी के सम्पर्क में न आता तो शायद मैं हिंदी लिखने और बोलने की कला का परिष्कार ही न कर पाता।

टूटी-फूटी अंग्रेज़ी बोलने वालों को भी आज लोग बड़ा मान-सम्मान देते हैं। पर मुझे उनकी बात याद है वे कहते थे कि 'अच्छी अंग्रेजी बोलने का अर्थ ये नहीं कि कोई शख्स विषय ज्ञान, विचारों और व्यक्तित्व की भी गहराई रखता हो'।

उन्होंने हिंदी को सर्वदा प्राथमिकता दी हालांकि वे अंग्रेज़ी भी अधिकारपूर्वक बोलते और लिखते हैं। समकालीन हिन्दी से आज पूरी आभा और शोभा के साथ इस्तेमाल किए जा रहे अनेक हिन्दी शब्दों के वे सर्जक हैं- जन्मदाता हैं।

एक बार उन्होंने किसी बात के सन्दर्भ में मुझसे कुछ यूँ कहा था- "Many people do not know that I have coined so

many Hindi words."

मैं उनकी जिस बात से सदा मुतासिर रहा वो ये कि उन्होंने हिंदी को स्टेटस सिम्बल दिया। वे हमेशा हिन्दी में ही बोलते और अपने विचार रखते हैं जब तक अंग्रेज़ी में बोलना आवश्यक न हो। ये बात आज पूरी देश को समझने की जरूरत है। अंग्रेजी सीखें। बोले वर्तमान समय में वो भी ज़रूरी है पर उस पर घमण्ड न करें स्द्धश्2 श्रद्धद्ध न करें और अगर अंग्रेज़ी कम भी आए या न भी आए तो हीन भावना रखने की जरूरत नहीं करे तो हिंदी पर अभिमान करें और ख़ूब करें और उन सब का दिल से सम्मान करें जो हिंदी बोलते हों और ये मानें कि वे ज्यादा सुसंस्कृत, ज्यादा सभ्य हैं।

मैंने देखा है देश की अन्य भाषाओं और बोलियों के प्रति भी अशोक जी समान आदर और सम्मान की भावना रखते थे। उन्होंने अपने कार्यकाल में प्रदेश के सरकारी काम-काज में हिंदी के मानक उपयोग की अत्यन्त महत्वपूर्ण पहल की।

मुझे इस बात का भी सौभाग्य प्राप्त है कि संस्कृति विभाग के अधीन उस्ताद अलाउद्दीन खाँ संगीत अकादेमी में वे मेरे और सुप्रसिद्ध संतूर वादक श्री ओमप्रकाश चौरसिया के बॉस रहे हैं। संस्कृति विभाग के सचिव और एक प्रशासक के रूप में वे अपने अधीनस्थ अधिकारियों और कर्मचारियों से बहोत सीमित वार्तालाप करते थे, मैं इसी श्रेणी में आता था। ज्यादातर.... वे तार शैली में बात करते थे, कम से कम समय में अधिक से अधिक काम की बात और काम खत्म। सरकारी बैठकों को छोड़कर 15 मिनिट से ज्यादा उनके साथ रहने का अनुभव नहीं है मुझे। सरकारी फाइलों में उनके अधिकांश आदेश और निर्देश, स्वीकृत, अनुमोदित, क्यों, अभी नहीं, देखा, चर्चा, ठीक है जैसे एक शब्द में होते थे। किसी फ़ाइल पर वे अगर दो लाइन से ज्यादा लिख दें तो इसका मतलब बिलाशक बहोत जरूरी ओर बड़ी बात है या फिर... किसी की सामत आ गयी है।

बगैर ऊपरी लकीर वाली (शिरोरेखा) उनकी हस्त लिपि बेहद कलात्मक और गतिमयता से भरी रहती थी। पर जो शख्स उन्हें कुछ ही समय से जानता हो उसके लिए उनकी हैंड राइटिंग समझना बहोत मुश्किल था।

अशोक जी, राष्ट्रीय अलंकरण समारोह जैसे बड़े आयोजनों के पूर्व अक्सर प्रतिपल कार्यक्रम की जानकारी अपने हाथ से टाइप करके मुझे दिया करते थे बाकी क्या और कैसे बोलना है इस बारे में मुझे उन्होंने कभी कुछ नहीं कहा। मुझ पर उनके इस विश्वास का मैं हमेशा शुक्रगुजार रहूंगा। भारत भवन, संस्कृति विभाग और उसके अधीन आदमी, परिषदों के अलावा अन्य दीगर संस्थाओं के राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रमों में कई बार भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री आर. वेंकट रमण, डॉक्टर शंकर दयाल शर्मा, श्री के.आर. नारायणन, उप राष्ट्रपति श्री कृष्णकान्त आदि की उपस्थिति में मुझे उद्घोषणा का सौभाग्य मिला।

गणमान्य अतिथियों, मंत्री, मुख्यमंत्री, राजदूत, राज्यपाल, प्रधानमंत्री अथवा राष्ट्रपति के लिए प्रोटोकॉल के अनुसार उनके पद के पूर्व किस विशेषण का इस्तेमाल किया जाए इसकी बड़ी सीख मुझे अशोक जी से मिली। इसके पहले कि मुझसे कोई गलती हुई होती।

अनेक लोग अतिउत्साह में बिना सोचे-समझे

समारोहों के अवसर पर पद के पूर्व माननीय।

परम आदरणीय, पूज्यनीय, श्रद्धेय, प्रातःस्मरणीय आदि शब्दों का इस्तेमाल किया करते थे।

अशोक जी का मानना था कि मंत्री, मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री जैसे शब्दों में स्वयं ही यथेचित आदर और सम्मान निहित है इसलिए अतिरिक्त विशेषण लगाने की ज़रूरत बिलकुल नहीं सिर्फ़ पद बोला जाए उतना काफी है हाँ, राजदूत, राज्यपाल और राष्ट्रपति के पूर्व महामहिम लगाया जाना आवश्यक है।

ये बात शायद ही कोई जानता हो कि चलती संगीत सभा के बीच अचानक कोई महत्वपूर्ण बात जब उन्हें याद आती तो वे उसे कागज के एक टुकड़े पर लिखकर मेरे पास मंच के पीछे किसी के हाथ से भिजवाया करते थे जिसमें लिखी आवश्यक सूचना को समय मिलते ही मुझे अनाउंस करना होता था। अनेक विख्यात कलाकारों के निधन और अन्य महत्वपूर्ण जानकारी मैंने कार्यक्रम के बीच अंतराल से श्रोताओं को समय-समय पर दी। उनके हाथ की लिखी उद्घोषणा और सूचनाओं के कुछ एक काग़ज़ आज भी बतौर निशानी मेरे पास सुरक्षित हैं।

अशोक जी, जो बोलते हैं, बगैर स्क्रिप्ट के बोलते है, मैंने केवल कलाकारों के प्रशस्ति वाचन के समय ही उन्हें टाइप्ड या प्रिन्टेड सामग्री का उपयोग करते देखा है अन्यथा किसी भी अन्य अवसर पर धारा-प्रवाह और विश्वास के साथ गम्भीर विषयों पर वे जिस प्रतिउत्पन्नमति। भाषा चातुर्य और चुटीले सन्दर्भों का प्रयोग कर अपने उद्बोधन को प्रभावशाली और अविस्मरणीय बना देते हैं ये उन्हीं के बस की बात है।

ये सदा सुनिश्चित है कि वे अपने वक्तव्य अथवा सम्बोधन में जिस भाषा शैली, वाक्यों और शब्दों का प्रयोग करते हैं वे व्याकरण और उच्चारण की दृष्टि से सौ प्रतिशत शुद्ध होते हैं। उन्हें आप किसी भी परिस्थिति में हकलाते हुए, सोचते हुए, अह... ऊँ.... आदि करते हुए कभी नहीं देखेंगे। मुझे हैरत होती थी अशोक जी बगैर किसी स्क्रिप्ट, नोट, चिट या help slip के इतने तरतीब और आत्मविश्वास से कैसे बोल लेते हैं। ऐसा लगता था कि वे जो बोल रहे हैं उन्हें कंठस्थ है।

मैं उद्घोषक के साथियों के लिए कठिन पर सामान्य से लगने वाले दो एक शब्दों का उदाहरण दे रहा हूँ जिनका अशोक जी बहोत सुंदर उच्चारण किया करते थे। वे शब्द है - 1. फणीश्वर नाथ रेणु, 2. कवि

3. प्रतिउत्पन्नमति इत्यादि।

इन शब्दों में फणीश्वर का 'फ' (फ़ नहीं।)

रेणु का 'णु' (णू नहीं) कवि का 'वि' (वी नहीं) और प्रतिउत्पन्नमति का 'ति' (ती नहीं) का स्वराघात कैसा हो ये बहोत मायने रखता है। मेरे द्वारा संचालित सैकड़ों कार्यक्रमों में अशोक जी मौजूद रहे। वे कभी मुझसे कुछ नहीं कहते थे पर दो बार उन्होंने मुस्कुराकर मेरे द्वारा बोले गए शब्द के गलत उच्चारण को सही बोलकर बताया। कार्यक्रम कोई भी हो वे हमेशा समय से पहले पहुँचा करते थे। मुझे कभी किसी से ये पूछने की जरूरत नहीं हुई कि कार्यक्रम कब शुरु करना है। जो समय है..... वो है। उन्होंने हमेशा सुनिश्चित किया कि कार्यक्रम समय पर आरम्भ हो और इसके लिए वे हमेशा प्रतिबद्ध रहें।

वे और बाबा कारंथ जी (अपवाद और परिस्थिति को छोड़कर) कभी किसी के लिए नहीं रुके फिर वो चाहे कोई भी हो। डर कर तो वे कोई काम करते ही नहीं थें। उनका जुमला आज भी बहुतों को याद होगा- 'मैं कुर्सी से हमेशा दो इंच ऊपर बैठता हूँ'।

ये उनकी कर्मठता और स्वाभिमान ही था कि जितना वे कुर्सी के मोह से दूर रहे उन्हें हमेशा उससे ऊँची कुर्सी के लिए योग्य समझा गया। श्री वाजपेयी संस्कृति सचिव और भारत भवन के न्यासी सचिव होने के अलावा सचिव और संचालक के रूप में अनेक अकादेमी परिषदों का काम देखा करते थे। सौभाग्य से मुझे लगभग 15 साल अशोक जी का सान्निध्य मिला और आपको ये जानकर ताज्जुब होगा कि इन सब वर्षों को अगर मैं जोड़ भी लूँ तो..... कुल मिलाकर उन्होंने मुझसे आज तक 60 मिनिट से ज्यादा बात नहीं की होगी। जरूरत ही नहीं हुई उन्हें। हम सब को भी पता होता था कि वे क्या और कैसा चाहते हैं, शार्ट कट में उनकी बात समझने का अभ्यास किया था हमने। किसी भूल या अनजाने में हुई गलती को वे नज़र अंदाज़ कर सकते थे शर्त ये, कि उन्हें आगे होकर बता भर दिया जाए बस..... पर कार्यक्रम आयोजन के किसी भी हिस्से में लापरवाही या फिर किसी कलाकार या श्रोताओं के सम्मान में कोई गुस्ताखी उन्हें कतई बर्दाश्त न थी।

'उत्सव' 74 या 75 के एक ऐसे ही आयोजन में रवीन्द्र भवन के कॉरीडोर में 'उत्सव' के दौरान मैंने उन्हें किसी विभागीय व्यक्ति को किसी लापरवाही के लिए बुरी तरह डाँटते हुए देखा था, उस दिन मुझे पता चला कि वे श्री अशोक वाजपेयी हैं। पीठ के पीछे वे अपने अधीन काम करने वाले लोगों की गर्व से तारीफ भी करते थे। देश के कई दिग्गज कलाकार उनके बारे में कहते थे बल्कि मैंने ही पण्डित किशन महाराज को मैहर समारोह में एक कलाकार की उसके पीठ पीछे और बाद में उनके मुँह पर तारीफ करते हुए सुना 'भाई वाजपेयी जी ने अपने विभाग में बहोत ढेर सारे रत्न इकट्ठे कर रखे हैं'।

अशोक जी को कोई भी ख़ुशामद और चाटुकारिता से कभी ख़ुश नहीं कर सकता, प्रतिभाशाली और काम करने वालों का उन्होंने हौंसला बढ़ाया और हमेशा उनकी कद्र की है। कुल मिलाकर मेहनती, समर्पित और काम करने वाले लोगों को उनसे कभी कोई शिकायत नहीं हुई।

देश और दुनिया के कवि, साहित्यकारों और कलाकारों में ये बात आज तक कायम-दायम और मशहूर है कि भव्य और गरिमामय आयोजन के साथ-साथ किसी भी कलाकार को जो पहुनाई और और मान-सम्मान मध्य प्रदेश के संस्कृति विभाग के आयोजनों में मिलता है वैसा देश और विदेश कहीं और दिखाई नहीं देता।

ये इज्ज़त और प्रतिष्ठा यूँ ही नहीं बनी है उन्होंने अपनी टीम को कलाकारों की इज्ज़त की जाना चाहिए इसके लिए कभी कोई आदेश या भाषण नहीं दिया दरअसल, इसकी ज़रूरत ही उन्हें नहीं थी। वे अपनी टीम के समक्ष कलाकारों के मान-सम्मान और उनकी देख-भाल का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करते थे।

एक बहोत ही सटीक उदाहरण दे रहा हूँ जिसका मैं स्वयं प्रत्यक्ष दर्शी हूँ। पण्डित भीमसेन जोशी पर केन्द्रित तीन दिवसीय सांगीतिक प्रसंग भारत भवन में आयोजित था। गलती न करूँ तो शायद बात होगी 1985 या 1986की। तीन सायंकालीन और दो प्रात:कालीन संगीत सभाएँ थीं। मैं अनाउंसर था। दूसरे दिन सुबह भारत भवन का अन्तरंग खचाखच भरा हुआ था। मंच के पीछे से पण्डित जी के गायन सभा की उद्घोषणा कर चुकने के बाद मैं चौरसिया जी से कुछ बात पूछने के लिए मुख्य द्वार से भीतर आया ही था कि पीछे से पण्डित कुमार गन्धर्व बगैर पूर्व सूचना के भीमसेन जी का गायन सुनने देवास से भोपाल आ गए। कुमार जी और भीमसेन जी गहरे मित्र थे। अब अगर पहले पता होता तो कोई उन्हें भारत भवन के गेट पर लेने ज़रूर जाता खैर....

मेरी उन पर नज़र पड़ी। पण्डित जी, आइये- आइए कहकर मैंने उन्हें मंच के ठीक सामने की पंक्ति में बैठने के लिए ले जाना चाहा। पण्डित भीमसेन जी का गायन चल रहा था तो वे कहने लगे नहीं-नहीं मैं यहीं बैठ जाता हूँ। मैंने उनसे आगे चलने का आग्रह किया तो उन्होंने मना कर दिया और चप्पल उतारकर वहीं सीढ़ी पर थोड़ी सी जगह बनाकर बैठ गए। पास ही संगीत रसिक स्वर्गीय पण्डित रामशरण गौतम भी बैठे थे। इसके पहले कि मैं कुछ बेहतर जगह देख पाता या उनके लिए बैठने की गद्दी ढूंढ पाता, पता नहीं कैसे अशोक जी की नज़र पीछे पड़ी। जैसे ही उन्हें भान हुआ कि वे पण्डित कुमार गन्धर्व हैं तो वे तुरन्त सामने से उठकर आए और उन्हें आगे चलने का आग्रह करने लगे।

पण्डित जी ने फिर कहा नहीं-नहीं मैं यहीं ठीक हूँ। अशोक जी नहीं माने और उनका हाथ पकड़कर उन्हें आगे ले जाने लगे।

कुमार जी ने कहा ठीक है..... पर मेरी चप्पल।

अशोक जी ने पूछा-कहाँ है आपकी चप्पल ?

उन्होंने इशारे से बताया और अशोक जी ने उनकी चप्पल हाथ में उठा ली और कुमार जी को आगे बैठाकर ही वे माने। अशोक

जी, कुमार गन्धर्व जी का अत्यंत सम्मान करते थे। उस दिन मेरे साथ उन सब लोगों को जिन्होंने वो दृश्य देखा उन्हें एक सन्देश मिला वो ये कि.....

संस्कृति और कलाकारों के सम्मान के लिए यदि आपको किसी कलाकार के जूते या चप्पल भी उठाना पड़े तो उठाओ और अगर आप ये नहीं कर सकते हैं तो आपके लिए संस्कृति सेवा से जुड़े किसी भी संस्थान में कोई जगह नहीं है।

जाएँ..... कहीं और काम देखें।

भोपाल में श्री जगदीश स्वामीनाथन, श्री ब.व. कारंथ, श्री रमेशचन्द्र शाह, श्री विजयमोहन सिंह, श्री दिलीप चित्रे के अलावा देश और विदेश के सैकड़ों प्रख्यात साहित्यकार और कलाकार उनके मित्र थे जिनसे वे बहोत बातें किया करते थे। अगर वे अपने साहित्यिक या कला मित्रों के साथ हैं तो हो नहीं सकता कि वहाँ ठहाकों की आवाज़ न सुनाई दे। हँसना और मुस्कुराना उनकी सेहत का राज था जो अब भी है।

वे हँसते थे तो हमेशा खुलकर और रोते.....

रोते मैंने उन्हें सिर्फ़ एक बार देखा है....

साहित्य परिषद् के प्रोफेसर्स कॉलोनी स्थित (पुराने) दफ्तर के हॉल में उनके परम मित्र डॉक्टर सोमदत्त की शोक सभा में। उस दिन के सदमें में ख़ुद को रोक न सके और फफक कर रो पड़े।

शेरो-शायरी का भी वे अपने उद्बोधनों में बख़ूबी इस्तेमाल करते हैं पर..... बहोत नहीं। कम किन्तु सही जगह पर उनके द्वारा इस्तेमाल किए गए शेर गहरा असर छोड़ जाते हैं। एक बार किसी शायर का उन्होंने एक शेर कहा था जो मुझे आज तलक याद है।

'थमते-थमते थमेंगे आँसू
आख़िर रोना है, कोई हँसी नहीं'।

बहोत से लोग ये जानते हैं कि अशोक जी अक्सर अपनी बातों में ये जिक्र करते हैं कि वे नास्तिक हैं- वे ईश्वर को नहीं मानते।

हम सब जानते हैं कि वे संगीत प्रेमी हैं, नृत्य प्रेमी हैं, कला प्रेमी हैं, प्रकृति, चित्रों, ध्वनि, नाद, शिल्प और मुद्राओं में वे सौन्दर्य और आनन्द तलाशते हैं।

शब्द, साहित्य और भाषा के वे सेवक, भक्त, संरक्षक और प्रेमी हैं, दुनिया में घटित हो रही अच्छी और बुरी बातों से उनका मन प्रभावित होता है। वे संवेदनशील हैं, परिवार जनों और नाती-पोतों के प्रति सहज ममता और गहरे प्रेम से भरे हैं।

वे कवि हैं, अनुचित, अन्यायपूर्ण और अनुपयुक्त बातों के प्रति आवाज उठाने और सच को बेझिझक बोलने का पौरुष उनके पास है।

संगीत उन्हें एक अलग लोक में ले जाता है जहाँ वे पण्डित मल्लिकार्जुन मन्सूर जैसे गायकों के संगीत के सम्मोहन में ईश्वर के होने का आाभास पा लेते हैं और कह उठते हैं- अगर ईश्वर होता होगा तो वो पण्डित मन्सूर की तरह होता होगा।

ऐसा सोचना, समझना और महसूस करना तो धार्मिक होना है, मानवीय होना है, मनुष्य होना है, ईश्वर की उपस्थिति और उसकी परमसत्ता को स्वीकार करना है। अशोक जी कवि हैं एक कवि की आत्मा में उपजी भावनाएँ..... शब्द से ही तो रूप पाती है।
लिखा भी तो गया है....
(In the beginning was the Word, and the Word was with God, and the Word was God)
मुझे यकीन नहीं होता।

मेरा मन नहीं मानता क्योंकि अपने निजी और सार्वजनिक जीवन में अपने किसी व्यवहार से उन्होंने ये प्रमाणित नहीं किया कि वे नास्तिक हैं। हाँ, मैं ये मानने को तैयार हूँ कि नास्तिक होने से उनका तात्पर्य आडम्बर, दिखावे का पूजा पाठ, अंधविश्वास और रुढ़िवादिता जैसी बातों के प्रति विमोह या घृणा होना है।

कला ईश्वरीय वरदान है। कलाएँ मनुष्यता का बोध कराती हैं, उसकी रचनात्मकता का समृद्धिपूर्ण विस्तार करती हैं। अशोक जी ने अपने पुरषार्थ, अपनी कलादृष्टि, सौन्दर्यबोध और कल्पनाशीलता से जिस तरह समारोहों के उत्कृष्ट स्वरूप और गरिमामय आयोजनों और कार्यशैली का आदर्श स्थापित किया और जिस तरह संस्कृति विभाग, भारत भवन और उसके प्रतिष्ठा आयोजनों को विश्वव्यापी पहचान, लोकप्रियता, सम्मान और प्रतिष्ठा दिलाई, ये उनका वो अवदान है जो लगातार फल-फूल रहा है, जिसे न तो अनदेखा किया जा सकता है और न, बिसराया जा सकता है।

वो... अमर हो चुका है।

'शायद कभी किसी सपने की दरार में,
किसी भी क्षण भर की याद में,
किसी शब्द की अनसुनी अन्तर्ध्वनि में-
हमारे होने की हलकी सी छाप बची होगी
बस हम न होंगे।'

श्रद्धाजंलि

कृष्णा सोबती
जन्म : 18 फरवरी 1925
मृत्यु : 25 जनवरी 2019

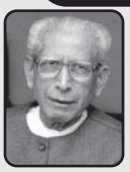

डॉ. नामवर सिंह
जन्म : 28 जुलाई 1926
मृत्यु : 19 फरवरी 2019

विष्णु पाठक
जन्म : 19 जून 1935
मृत्यु : 06 मार्च 2019

कला समय परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि

विश्व कविता

माया एंजलो की कुछ कविताएँ

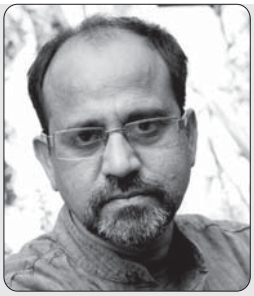

अनुवाद : मणि मोहन

प्रो. मणि मोहन अनुवाद के क्षेत्र में लंबे समय से सक्रिय हैं। अनुवाद के अलावा वे समकालीन हिंदी कविता के समर्थ कवि भी है। अनुवाद के माध्यम से वे हमें विश्व साहित्य की विरासत और हलचल से अवगत कराते रहते हैं।

सम्प्रतिः शा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय गंज बासौदा में अंग्रेजी के प्राध्यापक। मो.- 09425150346

4 अप्रैल, 1928 को सेण्ट लुइस, मिसोरी, अमरीका में जन्मी माया एंजलो (1928-2014) विश्व-विख्यात अमेरिकी अश्वेत कवयित्री, उपन्यासकार, निबन्धकार, पटकथा लेखिका, अभिनेत्री और सिविल राइट्स एक्टिविस्ट रही हैं। 1969 में प्रकाशित आत्मकथा 'आई नो व्हाई द केज्ड वर्ड सिंग्स' किसी अफ्रीकी मूल की अमरीकी स्त्री द्वारा लिखा गया पहली चर्चित पुस्तक है।

डॉ. रेखा भटनागर

असाधारण स्त्री

खूबसूरत स्त्रियाँ आश्चर्य से भर जाती हैं
मेरे रहस्य को लेकर
मैं सुंदर नहीं हूँ और न फैशन मॉडल की तरह
मेरा जिस्म है
परन्तु जब मैं उन्हें बताना शुरु करती हूँ
वे सोचती हैं, मैं झूठ बोल रही हूँ।
मैं कहती हूँ
यह मेरी बाहों के बस में है
मेरे नितम्बों के आकार
मेरे क़दमों की गति
मेरे होठों की गोलाई में है।
मैं एक स्त्री हूँ
असाधारण रूप से।
असाधारण स्त्री
यह मैं हूँ।

मैं एक कमरे में प्रवेश करती हूँ
एकदम शांतचित्त तुम्हारी तरह
और जहां तक पुरुषों का संबंध है
वे खड़े हो जाते हैं या
घुटनों के बल बैठ जाते हैं।
फिर वे मंडराने लगते हैं मेरे चारों तरफ
जैसे मधुमक्खियों का एक छत्ता।
मैं कहता हूँ
यह आग है मेरी आँखों में
और चमक मेरे दांतों में
मेरी कमर की लचक
और एक आनंद मेरे पैरों में
मैं एक स्त्री हूँ
असाधारण रूप से।
असाधारण स्त्री
यह मैं हूँ।

अब तुम समझ सकते हो
मेरा सिर झुकता क्यूँ नहीं है।
मैं चीखती नहीं और न हड़बड़ी में रहती हूँ
और न तेज आवाज में बोलती हूँ।
जब तुम मुझे कहीं से गुजरते हुए देखो
तुम्हें गर्व होना चाहिए।

मैं कहती हूँ,
यह मेरी सेंडिल की खटखट में है
मेरी जुल्फ़ों के पेंचोखम में है
मेरी हथेलियों में है,
क्योंकि मैं एक स्त्री हूँ
असाधारण रूप से।
असाधारण स्त्री
यह मैं हूँ।

अपना हाथ दो मुझे

अपना हाथ दो मुझे
मेरे लिए जगह दो
ताकि ले सकूँ तुम्हें
और पीछे चल सकूँ तुम्हारे
कविता के गुस्से से आगे

रहने दो न
दूसरों के पास
मार्मिक शब्दों का एकांत
और प्रेम की पराजय
का प्रेम

मेरे लिए
अपना हाथ दो मुझे

■

जंग बहादुर श्रीवास्तव 'बंधु' के गीत

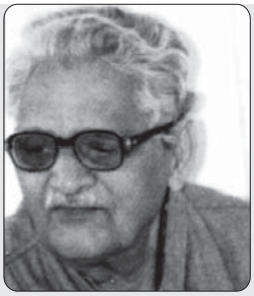

जंग बहादुर श्रीवास्तव 'बंधु'

जन्म : 8 दिसम्बर 1935, ग्राम बनीपार, जिला- कानपुर (उ.प्र.)
प्रमुख कृतियाँ : थोड़ा पानी, थोड़ी आग (गीत संग्रह), भोपाल दशक एवं सप्तराग (समवेत गीत संकलन), देश की श्रेष्ठ साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।
- 298, सर्वधर्म कालोनी, बी सेक्टर, करण अपार्टमेंट, कोलार रोड, भोपाल
मो.: 09889716125

दिये का कहना बाती से

तुम विष धरणी बनो
और मैं शीतल चंदन वृक्ष
लिपट कर रहना छाती से
दिये का कहना बाती से।

जिसको जहाँ मुनासिब लगता
दुनिया रहती है
अलगोजों के संग बांसुरी
ताना सहती है
तुम हिम सलिल तरंग
और मैं प्यासा कंठ अधीर
गागरी जल छलकाती से
दिये का कहना बाती से।

पाँव महावर पायल बाजे
नवल हरेरी धान

भूली मछली फिर करती है
पानी से पहिचान

तुम लांगुरिया गीत
और मैं रसमय छंद हुलास
लबालब राग प्रभाती से
दिये का कहना बाती से।

होने दो आज़ाद बजा दो
सांकन द्वारों की
तोड़ो दृढ़ प्राचीर स्वर्ग के
कारागारों की
तुम शापित उर्वशी
और मैं चिर निष्कासित यक्ष
संदेशवा मेघा पाती से
दिये का कहना बाती से।

चीखता चंदन

चीखता चंदन घिसो मत
पत्थरों की पीठ पर
हे विधाता गंध वाली
देह मत देना किसी को।

शुक हुआ बंदी कि उसने
आदमी के बोल सीखे
सींग सुन्दर क्या मिले
मृग झेलता है तीर तीखे
बूंद बरसे या न बरसे,
हानि आँगन की नहीं
जल रहित पर जहर वाले
मेह मत देना किसी को।

हस्तिनापुर की सभा ने
फिर नये पांसे मंगाए
देखना कोई युधिष्ठिर
फिर कहीं छलने न पाये
काट लेना जिंदगी
गिरि कंदराओं में कहीं
रत्न मण्डित लाख वाले
गेह मत देना किसी को

एक छल हो तो विवेकी
मन उसे परखे सम्भाले
घन तिमिर पूरित निशा में
कब कहाँ विषधर न खा ले
मन्थरा बैठी हुई है
कैकयी के कक्ष में
अथ अनर्गल मानसिक संदेह
मत देना किसी को।

वैराग्य के पूरे शतक में
दर्द का हिम शैल देखा
बज्र से खींची गयी है
छन्द की प्रत्येक रेखा
भरथरी की तप गुफा से
चीख आती है निरन्तर
पिंगला जैसी प्रिया से
नेह मत देना किसी को।

■

डॉ. महेन्द्र भानावत की कविता

डॉ. महेन्द्र भानावत

जन्म : 13 नवम्बर, 1937 उदयपुर (राज.) के कानोद कस्बे में

प्रमुख कृतियाँ :

देश विदेश की 500 से अधिक पत्र-पत्रिकाओं में लगभग 8000 से ज्यादा रचनाएँ प्रकाशित। लोक साहित्य संस्कृति विषयक 75 से अधिक पुस्तके प्रकाशित।

- 352, श्रीकृष्णपुरा, सेंटपॉल स्कूल के पास, उदयपुर-313001, मो. 9351609040

रज और सूरज

कांटेदार बैंगन सा नया वर्ष
तकिये के नीचे लेकर सोता हूं।
इससे मुझे शांति मिलती है
और वक्त जरूरत की
मुसीबत से भी बचना हो जाता है।
बैंगन बलिष्ट होता है ध्यान से देखने से
कई रंगों का इष्ट होता है।
वैसे बैंगन को देख मुसीबत आयेगी भी क्यों
बैंगन कोई गन तो है नहीं
जिसके चलाने के लिए
लाइसेंस हो और अप्टूडेट सेंस हो।
कांटा गुलाब का भी होता है
पर वह मेरे काम का नहीं
उसकी खुशबू से मैं खुश नहीं रह सकता

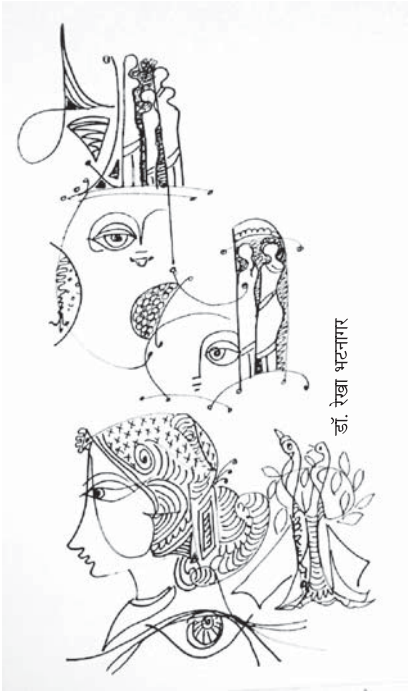

खुश रहने के लिए उसको पंपोलना
मेरी आदत में नहीं।
ऐसे कैसे आ जाता है नया वर्ष
घूंघट में कणकोले की तरह।
पुराना कहां चला जाता है
जूतियों में डाले तेल की तरह।
ऐसे ही तो स्वागत किया था
तुमने नये वर्ष का।
नये वर्ष में जैसे देवरे में नयी मूर्ति
और पुरानी पटकदी जाती है
उसके पीछे
'उतरी हिंगाण मंदर पाछै।'
नया-पुराना और पुराना-नया
यह क्या रेला है ?
अरे यही तो
चलाचली का खेला है।
मैं उसको विदाई देना चाहता था
सम्मानजनक समारोह कर
लेकिन तुम
कितने निष्ठुर निकले
उसकी नेमप्लेट ही गायब करदी
और एक बड़ा सा ताला जड़कर
लोक कर दिया कमरे को।
पूरे वर्ष भर जिसे अपनी पलकों में
बिठाये रखा
वे पलकें ही बदल दी तुमने।
खेत की पाल पर खेजड़ी के नीचे
खों-खों करती वह डोकरी
किसको बोल रही थी-
'पुराना जब अर्थ खो देता है
व्यर्थ हो जाता है।'
वह हेकड़ी में आगया था
कड़ी से कड़ी जोड़ना भूल बैठा
सुग्गा किसी का सग्गा नहीं होता।
मकड़ी के जाले की क्या बिसात
मगर वह भी
यादों के झरोखे
बंद किये देता है सुबक-सुबक
रोने के लिए या तो
या फिर
आगे की सुध ढोने के लिए।
नन्हीं सी ठीकरी भी टींच देती है
कभी-कभी बड़े पाते को।
तुम तो फिर भी पूरा वर्ष जीते हो
वह तो प्रतिदिन ही उदय और अस्त के
भंवरजाल में नट की तरह
डोले फिरता है।
तुमने ठीक कहा-
'जो रज होता है वही सूरज होता है,
जो सूरज होता है वही रज होता है।'

■

राम मेश्राम की ग़ज़लें

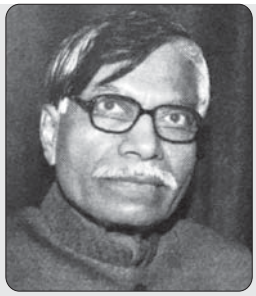

राम मेश्राम

संगीत समीक्षक राम मेश्राम, आधुनिक भाव-बोध की विचार परक हिन्दी ग़ज़ल के लब्ध प्रतिष्ठित ग़ज़लकार हैं। उनका ग़ज़ल संग्रह 'शोलों के फूल' अम्बिका प्रसाद 'दिव्य' पुरस्कार (2007) प्राप्त है। इधर राम मेश्राम ने ग़ज़लों में भारतीय ऋतुवर्णन-बारहमासा' का अभिनव प्रयोग किया है। उसी की दो ग़ज़लें वसन्त ऋतु के फागुन और चैत्र मास पर केन्द्रित यहाँ प्रस्तुत है।

- सी-72, विद्या नगर, होशंगाबाद रोड, भोपाल-462026, मो.: 9424400130

डॉ. रेखा भटनागर

1

सदा बहार अदा, बेहतरीन लगते रहें
समय को डाज दें, जानम हसीन लगते रहें,

सिरे से परले सिरे तक हैं खोखले लेकिन
लगें तो ऐसे कि धाँसू-ज़हीन लगते रहें,

जिएँ तो यंत्रवत, खाएँ तो डामिनो-पिज्जा
हमें जवाँ न कहें, हम मशीन लगते रहें,

हुजूर! आज नए साल की है रात, कि हम
मुबारकों को तो ताज़ातरीन लगते रहें।

न सोचिए, हमें पहिचानती नहीं दुनिया
हम अपने दिल को न इतने कमीन लगते रहें।

हरेक रंग की बेपर्दगी के दौर में हम
हज़ार पर्दों में पर्दानशीन लगते रहें।

जनाब, यूँ न करें ज़िन्दगी महाभारत
कि आप जगों-जदल की ज़मीन लगते रहें।

ये दूर-दूर तक करती है मार लफ़्फ़ाज़ी,
तो आप कुछ न करें, नामचीन लगते रहें।

2. फागुनी ग़ज़ल

साधुओं से, सन्तों से नाक रगड़वाती है
रुत बसन्त जोगी को जोगड़ा बनाती है

औलिया को, पीरों को, अच्छे खासे वीरों को
पाँच बाण सीने पर मार कर गिराती है।

लाल-श्वेत कचनारी साड़ियों के मौसम में
लब पे सौ गुलाबों के गुल ही गुल खिलाती है।

रात भर महकती है आम मंजरी तेरी
ये अमीर खुसरो को रात भर नचाती है

गूँजती है फागुन में सीटियाँ शरीफों की
आय-हाय पाकीज़ा फिल्मी गीत गाती है

एक ही लिपिस्टिक से सौ को बेध डाले है
फागुनी शिकारिन से मौत मात खाती है

फागुनी-बसन्ती रुत दारुओं की दारू है
देखिए तो बूढ़े की लार टपक जाती है

बरस रही है हल्दी, सर से पाँव तक मुझ पर
फाग ईसुरी तेरी, कैसा ग़ज़ब ढाती है

*ईसुरी (ईश्वरी : 1841-1909 ई.) मध्यप्रदेश के छतरपुर ज़िले के 'बुन्देली' भाषा के अप्रतिम प्राकृतिक कवि, जिन्होंने ''चौकड़िया'' छन्द में वसन्त ऋतु के लासानी-रूमानी फाग-गीत रचे

3. चैती ग़ज़ल

(चैत का पहला दिन : नया साल : वर्ष प्रतिपदा)

किसी पुण्य का फ़ल ज़मीं पर लगा है
उसी के सबब, यह नया दिन उगा है

नए चैत-केशरिया बालम की खातिर
सरे-राह केशरिया टेसू सजा है

अलस्सुबह कोयल से सुन कर तराने
हरी शाख का आम गदरा गया है

मिला अर्घ्य, श्रद्धा के जल का, कि सूरज
सुबह नर्मदा में नहा कर उगा है

कनेरी-घनेरी घटा में ठठा कर
समूचा बसन्ती शहर हँस पड़ा है

कोई रात शीतल, कोई दिन गरम है
कि नौ रस हैं चौरस, ये क्या माजरा है

अरे! क्यों रे सेमल, न हो रोज़ पागल
अगर चैत में तू जो दूल्हा बना है

नई फुनगियों के हरे ताज पहने
दरख़्तों ने मुझको 'नमस्ते' कहा है

मैं हूँ धूल का मुक्त झोंका कि मेरा
हवा संग उड़ने को मन कर रहा है।

■

कहानी

झलमला

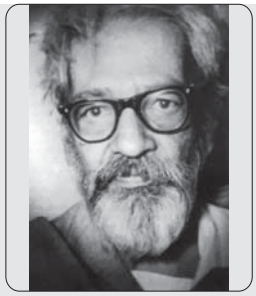

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

मैं बरामदे में टहल रहा था। इतने में मैंने देखा कि विमला दासी अपने आँचल के नीचे एक प्रदीप लेकर बड़ी भाभी के कमरे की ओर जा रही है। मैंने पूछा, ''क्यों री, यह क्या है?'' वह बोली, ''झलमला।'' मैंने फिर पूछा, ''इसमें क्या होगा?'' उसने उत्तर दिया, ''नहीं जानते हो बाबू, आज तुम्हारी बड़ी भाभी पंडित जी की बहू की सखी होकर आई है। इसीलिए मैं उन्हें झलमला दिखाने जा रही हूँ।'' तब तो मैं भी किताब फेंककर घर के भीतर दौड़ गया। दीदी से जाकर मैं कहने लगा, ''दीदी, थोड़ा तेल तो दो।'' दीदी ने कहा, ''जा, अभी मैं काम में लगी हूँ।'' मैं निराश होकर अपने कमरे में लौट आया। फिर मैं सोचने लगा- यह अवसर जाने न देना चाहिए, अच्छी दिल्लगी होगी। मैं इधर-उधर देखने लगा। इतने में मेरी दृष्टि एक मोमबत्ती के टुकड़े पर पड़ी। मैंने उसे उठा लिया और एक दियासलाई का बक्स लेकर भाभी के कमरे की ओर गया। मुझे देखकर भाभी ने पूछा, ''कैसे आए, बाबू?'' मैंने बिना उत्तर दिए ही मोमबत्ती के टुकड़े को जलाकर उनके सामने रख दिया। भाभी ने हँसकर पूछा, ''यह क्या है?''

मैंने गंभीर स्वर में उत्तर दिया, ''झलमला।''

भाभी ने कुछ न कहकर मेरे हाथ पर पाँच रुपए रख दिए। मैं कहने लगा, ''भाभी, क्या तुम्हारे प्रेम के आलोक का इतना ही मूल्य है?'' भाभी ने हँसकर कहा, ''तो कितना चाहिए?'' मैंने कहा, ''कम-से-कम एक गिनी।'' भाभी कहने लगी, ''अच्छा, इस पर लिख दो, मैं अभी देती हूँ।''

मैंने तुरंत ही चाकू से मोमबत्ती के टुकड़े पर लिख दिया- मूल्य एक गिनी। भाभी ने गिनी निकालकर मुझे दे दी और मैं अपने कमरे में चला आया। कुछ दिनों बाद, गिनी के खर्च हो जाने पर, मैं यह घटना बिलकुल भूल गया।

आठ वर्ष व्यतीत हो गए। मैं बी.ए., एल.एल.बी. होकर इलाहाबाद से घर लौटा। घर की वैसी दशा न थी जैसी आठ वर्ष पहले थी। न भाभी थी और न विमला दासी ही। भाभी हम लोगों को सदा के लिए छोड़कर स्वर्ग चली गई थीं, और विमला कटंगी में खेती करती थी। संध्या का समय था। मैं अपने कमरे में बैठा न जाने क्या सोच रहा था। पास ही कमरे में पड़ोस की कुछ स्त्रियों के साथ दीदी बैठी थी। कुछ बातें हो रही थीं, इतने में मैंने सुना, दीदी किसी स्त्री से कह रही है, 'कुछ भी हो, बहन, मेरी बड़ी बहू घर की लक्ष्मी थी।'

उस स्त्री ने कहा, 'हाँ बहन! खूब याद आई, मैं तुमसे पूछने वाली थी। उस दिन तुमने मेरे पास सखी का संदूक भेजा था न?' दीदी ने उत्तर दिया, 'हाँ बहन, बहू कह गई थी कि उसे रोहिणी को दे देना।' उस स्त्री ने कहा, 'उसमें सब तो ठीक था, पर एक विचित्र बात थी।' दीदी ने पूछा, 'कैसी विचित्र बात?' वह कहने लगी, 'उसे मैंने खोलकर एक दिन देखा तो उसमें एक जगह खूब हिफाजत से रेशमी रूमाल में कुछ बँधा हुआ मिला। मैं सोचने लगी, यह क्या है। कौतूहलवश उसे खोलकर मैंने देखा। बहन, कहो तो उसमें भला क्या रहा होगा?' दीदी ने उत्तर दिया, 'गहना रहा होगा।' उसने हँसकर कहा, 'नहीं, उसमें गहना न था। वह तो एक अधजली मोमबत्ती का टुकड़ा था और उस पर लिखा हुआ था 'मूल्य एक गिनी।' क्षण भर के लिए मैं ज्ञानशून्य हो गया, फिर अपने हृदय के आवेग को न रोककर मैं उस कमरे में घुस पड़ा और चिल्लाकर कहने लगा, ''वह मेरी है, मुझे दे दो।'' कुछ स्त्रियाँ मुझे देखकर भागने लगीं। कुछ इधर-उधर देखने लगीं। उस स्त्री ने अपना सिर ढाँकते-ढाँकते कहा, ''अच्छा बाबू, मैं कल उसे भेज दूँगी।'' पर मैंने रात को एक दासी भेजकर उस टुकड़े को मँगा लिया। उस दिन मुझसे कुछ नहीं खाया गया।

पूछे जाने पर मैंने कहकर टाल दिया कि सिर में दर्द है। बड़ी देर तक मैं इधर-उधर टहलता रहा। जब सब सोने के लिए चले गए, तब मैं अपने कमरे में आया। मुझे उदास देखकर कमला पूछने लगी, ''सिर का दर्द कैसा है?'' पर मैंने कुछ उत्तर न दिया, चुपचाप जेब में मोमबत्ती को निकालकर जलाया और उसे एक कोने में रख दिया।

कमला ने पूछा, ''यह क्या है?''

मैंने उत्तर दिया, ''झलमला।''

कमला कुछ न समझ सकी। मैंने देखा कि थोड़ी देर में मेरे झलमले का क्षुद्र आलोक रात्रि के अनंत अंधकार में विलीन हो गया।

स्त्रोत : विश्वकला एवं संस्कृति केन्द्र,
आईसेक्ट वि.वि. भोपाल (म.प्र.)

■

कहानी

इंतज़ार

अभिलाषा श्रीवास्तव

आज होली है, सब एक दूसरे को रंग लगा रहे हैं... पर मेरी आँखें तो किसी और को ढूँढ रही हैं। मेरी कॉलेज की सारी फ्रेंड्स आ गई हैं और सब होली खेलने के लिये तैयार हैं... आज मेरे घर में पापा ने पार्टी रखी है... शहर के सारे बड़े लोग आए हुए हैं... लॉन तरह तरह के रंग, पिचकारी, मिठाइयां और रंग बिरंगे लोगों से सज़ा हुआ है... अब तो मेरी सहेली ने कह ही दिया... ''कब तक उसका इंतज़ार करोगी, चलो होली खेलते हैं''... मैंने भी कह दिया ''जिंदगी भर इंतज़ार करूंगी और सबसे पहले रंग भी उसी से लगवाउंगी...''इतना सुनते ही वो हँस पड़ी और बोली ''ज़्यादा बातें ना बनाओ अभी तुम्हारे पापा तुम्हारी शादी कहीं और करा देंगे और तुम दो, तीन बच्चों की अम्मा बनकर गृहस्थी संभाल रही होगी... उसकी याद तक नहीं आयेगी''- इतना सुनकर मैंने कहा... ''रुक बताती हूँ तुझे,'' और मैं उसके पीछे भागी... जाकर सीधी ''उससे'' ही टकराई.. शिकायती लहज़े में मैंने कहा ''कितनी देर लगा दी.. कबसे इंतज़ार कर रही हूं के तुम आओ और सबसे पहले रँग लगाओ... देखो मेरा चेहरा बिल्कुल साफ है, किसी को रंग नहीं लगाने दिया मैंने...'' और मैं अपनी इस बात पर खुद ही शर्मा गई।

इतने में पापा की आवाज़ आई के सब लंच के लिए आ जाओ... सब अंदर चले गए.. हम दोनों अभी भी लॉन मे ही थे, मैंने गुस्से से कहा ''अब भी महाशय को इनविटेशन देना होगा क्या.. लगाओ ना रँग''.. उसने धीरे से लाल रंग हाथों में लिया और मेरे दोनों गालों पर लगा दिया..और हम दोनों मुस्कुरा दिए। इतने में फिर पापा की आवाज़ आई ''बेटा अभी तक वहीं खड़ी हो.. चलो अपने फ्रेंड को लेकर लंच के लिए आओ'' होली की पार्टी बहुत शानदार रही.. मेहमान जा चुके थे.. मेरी फ्रेंड्स भी जा चुकी थी.. बचे थे ''वो'', मेरी सहेली और मैं। उसने कहा मुझे स्कॉलरशिप मिली है आज प्रिंसिपल सर को विश करने गया था तो उन्होंने ही बताया.. कुछ दिन में लेटर भी आ जाएगा, फिर मैं अपनी माँ का सपना पूरा कर सकूंगा.. पूरी ज़िंदगी तो उन्होंने गरीबी में काट दी, अब मैं कुछ बनकर उनके सारे दुख दूर कर दूँगा.. वो बड़े उत्साह और खुशी से ये सब बता रहा था। पर मेरा दिल बैठा जा रहा था.. अब वो विदेश चला जाएगा, मैं कैसे उसके बिना रहूंगी.. उसने कहा ''तुम खुश नहीं हो क्या''.. मैं बोली अरे बहुत खुश हूं.. तुम जो खुश हो... उसके जाने के बाद सहेली के सामने रोना आ गया.. तो उसने मुझे समझाया। ''देख दो साल की ही तो बात है.. वो कुछ बन जाएगा तो अंकल जी भी मना नहीं कर पाएंगे उससे शादी के लिए.. उसे जाने दे.. तू इंतज़ार कर।''

वो चला गया ये कहकर के वापस आकर हमारे सारे सपने पूरे होंगे। मैंने अपना ग्रेजुएशन पूरा कर लिया था... उसके आने में अभी भी एक साल बाकी था.. मैंने पापा से आगे की पढ़ाई के लिए कहा तो वो बोले ''पढ़ लिया जितना पढ़ना था... मैंने तुम्हारे लिए एक अच्छे घर का लड़का देखा है... बस अब शादी करके घर बसाओ.'', मुझे धक्का सा लगा.. पता नहीं कैसे हिम्मत करके उसी वक़्त सारी बात बताई... और बोली के मैं ''उसका'' इंतज़ार करूंगी।

पर पापा कहां मानने वाले थे, शादी तय कर दी.. मैं हर पल मर रही थी.. उसका नंबर बहुत लगाया पर नहीं लगा.. शादी से ठीक आठ दिन पहले बिना किसी को कुछ कहे मैंने वो शहर छोड़ दिया। कुछ पैसे ज़रूर साथ ले आई थी, जो मैंने ट्यूशन पढ़ा के इकट्ठा किए थे... यूँ तो मेरे पापा बहुत बड़े बिल्डर थे... पैसे की कोई कमी नहीं थी... मगर मुझे शुरु से ही सेल्फडिपेंडेंट होना सही लगता था...

अब मैं, कुछ पैसे और कुछ कपड़े के साथ एक नए शहर में थी... मैं तो ट्रेन में चढ़ गई थी ये भी नहीं पता था के कौन सी ट्रेन है... कहाँ जा रही है... लास्ट स्टेशन था.. कलकत्ता.. जहां मैं खड़ी थी। क्या करूँ कहाँ जाऊँ यही सोच रही थी.. अचानक याद आया.. मदर टेरेसा का आश्रम यहीं है.. जो लोगों की सेवा करता है.. मेरे कदम बढ़ चले उस ओर.. वहाँ पहुँची तो एक सिस्टर ने पूछा..'क्या तकलीफ है.. कोई बीमारी या पति ने निकाल दिया.. या कोई और बात.' मैं क्या कहती.. बस मुंह से निकल गया अनाथ हूं.. क्र. पास हूं नौकरी चाहिए.. सिस्टर ने मुझे ऊपर से नीचे तक देखा और वहाँ की हैड सिस्टर के पास ले गई.. मैंने अपनी बातों से उन्हें मना लिया था और वो मान गई और मुझे रहने की जगह और बच्चों को ट्यूशन देने का काम मिल गया।

दिन, महीने और साल निकलते जा रहे थे, उसका नंबर नहीं लग रहा था.. मैं निराश होने लगी थी.. वापस जाती तो पापा शादी कर देंगें.. उस वक़्त सेल फोन नहीं थे कि किसी से भी संपर्क कर लो.. बस किसी किसी के घर में ही होते थे वो भी लैंडलाइन।वक़्त और गुज़रा और मेरी काम के प्रति लगन देख के हेड सिस्टर ने मुझे उनके स्कूल में

टीचर की जगह दे दी और रहने के लिए अलग कमरा जिसमें छोटी सी रसोई भी थी.. मैं खुश थी मगर दुखी भी...धीरे धीरे ज़िंदगी ने रफ्तार पकड़ी और अब मैं उसी स्कूल की प्रिंसिपल थी.. इस बीच कई बार उसे ढूंढने की कोशिश की थी.. अब खुद को समझा लिया था.. 'उसकी यादें और मैं' यही थी अब मेरी ज़िंदगी।

आज होली है और मैं अपने ऑफिस में कुछ काम कर रही हूं.. यहां सब जानते हैं कि मैं होली नहीं खेलती, इसलिए कोई रंग लगाने की कोशिश भी नहीं करता था.. आज के दिन उसकी सबसे ज्यादा याद आती थी.. उससे रँग लगवाने के बाद फिर किसी से नहीं लगवाया था, पूरे 19 साल बीत चुके थे..40 अभी कुछ दिन पहले ही पूरा किया था।

हां तो ऑफिस के काम में लगी हुई थी के प्यून की आवाज़ आई. 'मैडम एक साहब आपसे मिलना चाहते हैं.. होली पर बच्चों के लिए कुछ तोहफे लाए हैं' मैंने सोचा आज होली के दिन कोई इतना फ्री है.. मैंने कहा अंदर भेजो.. थोड़ी देर बाद दरवाज़े पर दस्तक हुई.. देखा तो एक अधेड़ और संपन्न दिखने वाला व्यक्ति खड़ा था.. उसे अंदर आने को बोला और बैठने का इशारा किया.. जैसे ही हम दोनों ने एक दूसरे को देखा. दोनों ही चौंक पड़े.. 19 साल बाद वो मेरे सामने था वो एक बड़ा अधिकारी था और अभी अभी उसका तबादला कलकत्ता हुआ था. . हम दोनों ने ही खुद को संभाला और बातचीत का सिलसिला आगे बढ़ा. उसने बताया के उसने मुझे बहुत ढूंढा था.. मेरे घर भी गया था.. पर उन लोगों को भी तो नहीं पता था के मैं कहाँ हूं.. ज़िंदा हूं भी या नहीं.. मैंने भी बताया के उसका नंबर मैंने कितनी बार लगाया था.. उसने बताया.. उसे पढ़ाई करते करते ही वहाँ एक अच्छी जॉब मिल गयी थी तो वो दूसरी जगह शिफ्ट हो गया था.. मेरी सहेली को फोन किया था नया नंबर देने के लिए.. पर तब तक तो मैं उस शहर को छोड़ चुकी थी।

सारी बातें मैं भी बता चुकी थी के कैसे यहां आई और अब यहां के स्कूल में प्रिंसिपल हूँ.. शिकवे शिकायतों का दौर ख़त्म हो चुका था.. हम दोनों के बीच लंबी चुप्पी के बाद वो बोला.. यहां कहाँ रहती हो.. मैंने कहा चलो.. वो मेरे पीछे चल दिया.. अब मुझे एक अलग अच्छा बड़ा घर मिल चुका था.. प्रिंसिपल जो थी.. हम घर के अन्दर आए.. मैंने पूछा 'चाय ?' उसने कहा हां.. मैं जब तक चाय लेकर आई, वो घर को अच्छी तरह देख चुका था.. 'चाय पीते हुए पूछा.. और कौन रहता है तुम्हारे साथ ?' मैं बोली कौन दिख रहा है मेरे अलावा.. उसने कहा 'मैं'.. मेरा गला भर आया.. उसने कहा होली नहीं खेली तुमने.. मैं बोली तुम्हारे साथ जो खेली थी वो आखिरी होली थी मेरी.. उसने मेरा हाथ पकड़ा और मेरे घर के छोटे से मंदिर के सामने लाया.. भगवान के लिए रखे सिंदूर को हाथ में लेकर पूछा 'क्या अब भी नहीं खेलोगी होली ?' मेरे कुछ कहने से पहले ही मेरे माथे पर सिंदूर लगा दिया.. और बोला मेरे साथ भी इतने साल सिर्फ तुम ही रहीं.. उसने मुझे गले से लगाया और हम दोनों बहुत देर तक रोते रहे... आज मैं एक नए रंग में रंग चुकी थी.. हमेशा के लिए.. अब हर दिन मेरे लिए 'होली' था....

-भोपाल, मध्य प्रदेश

नाटक 'जमोला का लमझना' का कथासार

लेखक : लक्ष्मीनारायण पयोधि

'जमोला का लमझना' काव्य नाटक को अंतर्वस्तु के रूप में जनजातीय वाचिक परम्परा में निहित ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सूत्रों का प्रयोग लेखक श्री लक्ष्मीनारायण पयोधि द्वारा किया गया है। इस नाटक में पृथ्वी की उत्पत्ति से लेकर जीव-जगत के विस्तार तक की प्रक्रिया को प्रतीकात्मक रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास है। कथा में जाजनतीय संस्कृति में विद्यमान जन्म, विवाह और मृत्यु संस्कार भी प्रासंगिक रूप से आते हैं।

'लमझना' गोंड, बैगा, कोरकू आदि जनजातियों में घर जमाई बनाने के लिए उपयुक्त वर के चयन की एक प्रथा है। इसके अनुसार बेटी के लिये एक ऐसे युवक को घर में रखकर परखा जाता है, जो परिवार की जिम्मेदारी संभाल सके। इस नाटक में सुकमन और अपनी बेटी जमोला के लिये बुधरू को लमझना बनाकर लाया जाता है। बुधरू घर के सारे काम अपने भावी ससुर के बताये अनुसार करने की कोशिश करता है। वह एक संकोची स्वभाव का युवक है, जो अपने काम में लगा रहता है। सुकमन जमोला के साथ हाट-बाजार और जंगल में महुआ बीनने भी जाता है। इस प्रकार की संगति से जमोला बुधरू से मन ही मन प्रेम करने लगती है। नाटक में प्रसंगानुरूप युवक-युवतियों के बीच होने वाले श्रृंगारिक नृत्य-गीतों के साथ उनके परस्पर हास-परिहास और छेड़-छाड़ के दृश्य भी शामिल हैं।

जमोला का पिता सुकमन थोड़े कठोर स्वभाव का है। वह बुधरू के हर काम को बड़ी बारीकी से देखता और गलतियों पर डाँटता रहता है। अंततः बुधरू उसकी कसौटी पर खरा नहीं उतरता, जिससे वह उसे वापस उसके घर भेज देता है। जब जमोला को इस बात का पता चलता है तो वह पिता से विद्रोह करती है और अपने प्रेम को वापस पाना चाहती है। थोड़ी नाटकीय स्थितियों के बाद जमोला का पिता बुधरू को वापस लाने के लिये मान जाता है और इस प्रकार नाटक का सुखांत होता है। नाटक में बुधरू की स्मृतियों के बहाने उसके जन्म प्रसंग और माँ की मृत्यु के दृश्य भी शामिल होते हैं, जिनके मायम से जनजातीय संस्कृति में विद्यमान गातला, सिडोली आदि परम्पराओं का भी परिचय मिलता है।

'लघुकथा'

बालश्रम बनाम बाल कलाकार

सुबह के आठ बजे हैं। मेरे सामने वाले घर में शादी की चहलपहल है। बाहर रंग बिरंगे तंबू बने हुए हैं। महिलाएं चटकीले वस्त्रों से सुसज्जित सोलह श्रृंगार करके विवाह के रीति रिवाज निभाने में व्यस्त हैं।

तंबू के बाहर एक तख्ते पर प्रसिद्ध पारंपरिक राजस्थानी घूमर बजाने वाले ग्रामीण कलाकार की बग़ल में लगभग सात-आठ साल का एक दुबला पतला सांवला सा बच्चा नगाड़े पर कहरवा बजा रहा है। एकदम सधे हुए हाथ, निगाहें आने-जाने वालों की सुंदर पोशाकों पर फिसलती हुई। कभी कभी बगल में बैठे अपने पिता की ओर (जो शहनाई पर घूमर बजा रहा है) देख लेता है।

मुख पर तटस्थता के भाव, बिना तेल के बिखरे रुखे बाल, सूखे होंठ, निस्तेज किन्तु जिज्ञासु आँखें, मैला कुचैल कुर्ता पजामा पहने, नगाड़ा बजाने में तल्लीन। लो, अब रजवाड़ी घूमर बजने लगी। मगर क्या मजाल कि नगाड़े की ताल ज़रा भी बैताला हो जाये। बड़े मीठे सुर में ये गीत बज रहे थे कि चाक-पूजन कर के महिलाओं का झुंड सिर पर सजे धजे कलश लेकर आ गया। आगे आगे बैंड वाले बजा रहे थे-

''किसी राह पे किसी मोड़ पर
कहीं चल न देना तू छोड़ कर
मेरे हमसफर मेरे हमसफर...''

संगीत की थोड़ी बहुत समझ रखने वाले पाठक इस गीत की पंक्तियों को पढ़ते ही गुनगुना उठेंगे और ताल रूपक का ठेका देंगे, जो सात मात्रा की ताल है। सोचिए जरा, नगाड़े वाला बच्चा कहरवा बजा रहा है, आठ मात्रा की और बैंड वाले बजा रहे हैं रूपक-सात मात्रा की। पर अब भी नगाड़े की ताल बेताल नहीं हो रही है, जरा भी।

पतली पतली लकड़ियों से, सूखे पतले हाथ, नगाड़े पर, शहनाई पर बजने वाली धुन पर निरंतर ताल देते हुए। मैं आश्चर्य मिश्रित सुखानुभूति से सराबोर।

मन में उठा प्रश्न...

लोग कहते हैं (आम लोग कम, अवसरवादी ज्यादा) कि बाल श्रम उचित नहीं है। पर यदि बचपन से ही किसी की प्रतिभा/कला को प्रकट होने का अवसर मिले और उसे उसका पारिश्रमिक भी मिले तो क्या बुरा है? टी वी में तो उन्हे प्रतिभागियों के श्रम की पराकाष्ठा से रियलिटी शो वाले करोड़ों रुपये कमा रहे हैं। क्या ये कोरा बाल श्रम है?

हाँ, ये तो है कि वह बच्चा शायद बिना हाथ मुंह धोये, सिर्फ चाय पीकर या वह भी नहीं पाकर उनींदा उठ कर चला आया होगा। अभी सुबह सुबह की नींद उसकी पीली आंखों में नीली नीली झांईं का आभास दे रही थी। वह बार बार जम्हाई ले रहा था। पलकें अपलक। आंखों में शादी की गतिविधियों को देखने का, चमक दमक देखने का कुतूहल ज्यादा था, किन्तु उससे क्या?

उसे कहीं भी अपने काम के प्रति लापरवाह आप नहीं कर सकते। पिता का दांया हाथ बना वह कमाऊ पूत था अभी से। इसका उसे पता तो नहीं था पर फिर भी पिता की उम्मीद भरी निगाहों से वह अनजान भी नहीं था।

उसका पिता उसे बहला फुसला कर, अच्छे पकवान, मिठाई पाने का लालच देकर लाया होगा शायद। शायद इसीलिए उसने नींद, खेल, आजादी से ज्यादा आज का काम ज़रूरी समझा। पढ़ने की शुरुआत की भी होगी तो किसी गांव के सरकारी स्कूल में दूसरी या तीसरी कक्षा में वह पढ़ता होगा। पढ़ता भी क्या होगा, वहाँ भी मिड डे मील (Mid Day Meel) के लिए खिंचा चला जाता होगा।

नहीं! नहीं! ज़रूरी नहीं कि वह पढ़ना न चाहता हो। हो सकता है, इसी उम्र में वह जान गया हो कि पढ़ लिखकर भी उसे अपने पिता के साथ अपना खानदानी काम ही करना है। इसीलिए बिना किसी हील हुज्जत के वह नगाड़े बजाने का काम खुशी खुशी या नाखुशी से या खुशी और ग़म दोनों से दूर रह कर तटस्थतापूर्वक कर रहा हो। सच कहूँ, उसकी कद काठी और वज़न से ज्यादा बड़े और भारी थे वे नगाड़े।

एक ओर तो मन उसकी कला को सुनकर प्रसन्न हो रहा था तो दूसरी ओर कलाकारों की उच्च शिक्षा के प्रति उदासीनता से दुखी भी। ऐसे हुनरमंद बच्चों की तालीम बाकायदा हो ऐसे कोई प्रयास सरकारी स्तर पर भी तो नहीं हो रहे।

तो क्या बालश्रम उचित है? या फिर इन बाल कलाकारों को अपने हुनर से मुंह मोड़ कर सिर्फ शिक्षा पर ध्यान देना चाहिए? और उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद अपनी कला से जुड़ना चाहिए और अपने रोज़गार का साधन बनाना चाहिए? या कि पुश्तैनी कला से मुंह मोड़ कर किसी और ही क्षेत्र में कदम बढ़ा कर ''धन दौलत'' से अपनी ''तिजोरियां'' भर कर दुनिया में जीने का तरीका सीखना चाहिए? क्या कोई वास्तविक कलाकार ऐसा कर सकता है?

जो कला बाप दादा के ज़माने से चली आ रही हो, क्या वह शिक्षण प्रशिक्षण संस्थानों में सीखी जा सकती है? उतनी ही निष्ठा से? क्या उसमें उतनी ही प्रवीणता आ सकती है? उतना ही आत्मविश्वास भी?

ढेर सारी ख़ामियों वाली शिक्षा पद्धति और परीक्षा प्रणाली के बीच वह अपने हुनर से कभी आत्मा के धरातल पर जुड़ सकता है? मैं यह सब सोच रही हूं और वहाँ सामने शहनाई पर बज रहा है....

''ज़रा सो सीधो हो जा बालमा,
म्हारो पल्लो लटके....''

नगाड़े की मधुर ताल बरकरार है, गीत पर थिरकती हुई महिलाओं के ठुमकों के साथ.....।

– **डॉ. तारुणी कारिया,** मो. 7016216649

■

आलेख

विश्व प्रसिद्ध किशनगढ़ चित्र शैली

डॉ. श्रीमती उर्मिला शर्मा

राजस्थान की किशनगढ़ चित्रशैली, चित्रांकन परम्परा के संसार में अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। राजा किशनसिंह ने ''किशनगढ़'' नामक इस छोटी सी रियासत की स्थापना की थी। वे जोधपुर के महाराजा के छोटे भाई थे। सन् 1611 ई. में उन्होंने झील के किनारे एक नगर बसाया जिसका नाम उन्होंने अपने नाम पर ''किशनगढ़ रखा''

किशनगढ़-अजमेर जयपुर मार्ग पर स्थित है। आजादी से पूर्व यह एक स्वतन्त्र रियासत थी। आजादी के बाद इसे जयपुर जिले में शामिल किया गया। सन् 1956में जब अजमेर को राजस्थान में शामिल किया गया तब किशनगढ़ को जयपुर से अजमेर जिले में स्थानान्तरित कर दिया। वर्तमान में यह अजमेर जिले का उपखण्ड मुख्यालय है। मनोहारी रंग योजना, गतिमान रेखा सौंदर्य तथा लावण्यमय-संयोजन वैशिष्ट्य के कारण किशनगढ़ शैली सबसे अलग है। काव्य और कला का कमनीय संगम किशनगढ़ शैली में हुआ है कृष्ण भक्ति की अनन्त भक्ति धारा से बनी भक्त कवि नागरी दास की रसिककला एवं भावुकता से सम्पन्न और ''बणी-ठणी'' के अनिद्य रूप सौन्दर्य की प्रेरणा से पल्लवित संसार प्रसिद्ध किशनगढ़ चित्र शैली विश्व चित्रकला के संसार को एक महान देन है। इस चित्रांकन का पूरा केन्द्रीयकरण राधा और कृष्ण की प्रणय भंगिमाओं पर ही रहा है। इस शैली की कमनीय राधा दूसरी शैलियों की चित्रित राधा से भिन्न है। संस्कृत काव्य में वर्णित आदर्श नायिका को आधार मानकर निहालचन्द ने बणी-ठणी के रूप में नागरीदास की राधा रची। इनकी रची राधा बड़ी अलंकृत थी। लम्बी नायिका, कमल की पंखुड़ी जैसे नेत्र और लम्बी केशराशि इस राधा के अनिद्य सौन्दर्य की विशेषता थी। बणी-ठणी की मुस्कान इतनी अधिक आकर्षक थी कि अनेक निष्णांत कला समीक्षक उसे ''भारतीय मोनालिसा'' की संज्ञा देते हैं बणी-ठणी के चित्र का संसार में उतना ही आदर्श पूर्ण स्थान है जितना राधा रानी और मोनालिसा का। किशनगढ़ शैली के विकास में राजा रूपसिंह का भी हाथ रहा है। किशनसिंह के उत्तराधिकारी रूपसिंह तथा उनके उत्तराधिकारी मानसिंह हुए। राजा रूपसिंह ने किशनगढ़ से लगभग दस मील दूर रूपनगढ़ बसाया था। वे भक्त-हृदय और विद्यानुरागी राजा थे। बल्लभकुल में आस्था रखने के कारण राजा रूपसिंह राधाकृष्ण के युगल स्वरूप के आराधक थे। यही कारण था कि इनके समय के चित्रकारों का अभिष्ट राधा-माधव की मनोहारी लीलाओं का सुधापान कराना ही रहा है। राजा रूपसिंह के काल में बने चित्रों का कल्पनालोक इसी साधना और भक्ति भावना का संकेत देता है।

बल्लभकुल में दीक्षित लोग कृष्णभक्ति से मोक्ष प्राप्त करने में विश्वास रखते हैं। वे भी कृष्ण के मोहक बालरूप, नटखट किशोर और गम्भीर युगल रूपों के अतिरिक्त उनके जीवन की सभी लीलाओं का मनन चिन्तन एवं दर्शन करके स्वयं को रस पुरुष श्रीकृष्ण की भक्ति में लीन रखना पसन्द करते हैं। मानसिंह के पश्चात् राजा राजसिंह के संयम में चित्रांकन की परम्परा किशनगढ़ में फूली-फली। राजसिंह स्वयं एक अच्छे चित्रकार थे। वे पुष्टि मार्गीय वैष्णव थे तथा कृष्ण लीला का अंकन उनका प्रिय विषय था। उन्होंने तैंतीस ग्रंथों की रचना की थी।

किशनगढ़ की चित्रकला को चरम पर पहुँचाने का श्रेय सावंतसिंह (1699-1764) को है जो नागरीदास के नाम से प्रसिद्ध हुए। नागरीदास राजा राजसिंह के पुत्र थे। भावुक एवं सन्त प्रवृत्ति के नागरीदास राज्य व शासन कार्य से उदासीन थे किन्तु कृष्ण भक्ति में उनका मन खूब रमा। वे कविता और कला दोनों के प्रेमी थे। उन्हीं की प्रेरणा से किशनगढ़ शैली के चित्रों का साहित्यिक आधार उदात्त एवं सशक्त बना। सन् 1723 से 1731 ई. के मध्य उन्होंने ''विहार चन्द्रिका'' ''रसिक-रत्नावली'' और ''मनोरथ-मंजरी'' जैसे अप्रतिम कृष्ण काव्यों की रचना की।

बणी-ठणी में एक निष्पाप कैशोर्य के सौंदर्य का चित्रण है। यह चित्र नहीं अपितु कला के आकाश से टपकी ऐसी स्वाति नक्षत्र की बूंद है, जो किशनगढ़ शैली की सीप में समाकर कला का अमूल्य मोती बन गई। राधा के रूप लावण्य को अपने चरम में छूने वाला यह एकमात्र अप्रतिम और अतुलनीय भारतीय कला साधना का अनुपम चित्र है। इस चित्र को देखकर ऐसा लगता है मानों क्षितिज के फलक पर अनायास ही उषा के रंग अंगड़ाई लेकर जाग रहे हों। शीश पर गोल रखड़ी, मोतियों की लड़ी से माँग पर श्वेत आभा की रेखा खींच रही है,

संवरी हुई केश राशि पुष्प भरी चूनर से आधे ढके है, वे गरदन तक आते-जाते घने हो चले हैं। कान के पास से एक लट छिटककर अलग हो गई, जैसे कालिंदी की क्षीण धारा अपने उत्स से पतली रेखा के रूप में फूटी हो, फिर आगे जाकर उसकी एक शाखा अलग प्रवाहित हो गई हो और मूल लहराती धारा अपने वेगवान श्यामल जल के साथ प्रयागराज की गंगा में विलीन हो गई हो। कान झूमर से सज्जित हैं। नासिका में नथ हैं, भौंहें सर्पिल हैं, जैसे साँवली पद्मा नागिन की भाल पर अठखेलियाँ कर रही हो। कटाक्ष लिये, कटार-सी सपनीली आँखें हैं, जिनमें नेह का नीर और विरह का पीर है। लगता है कि यह नयन नहीं, नवोढ़ा है, जिसे पलकों के आँचल ने ढाँक लिया हो।

लंबी उन्नत सुती हुई नासिका है। इसके नीचे लाल अधर की रेखा, जैसे खिलते कमल की पँखुरियों ने एक कतार सँवार दी हो। गोल चिबुक, लंबी कमलिनी की नाल सी पतली ग्रीवा, जो भव्य हार से अलंकृत है। रंग हलके गाढ़े हैं। परिवेश हलका पीला और अनुपात संतुलित है।

प्रख्यात कला इतिहासकार नर्मदा प्रसाद उपाध्याय के अनुसार- इस चित्र में भोली और सौम्य राधा का सौंदर्य नहीं, बल्कि साक्षात सौंदर्य की ममता झलकती है। यह वास्तव में राधा के सौंदर्य का चित्रांकन नहीं, अपितु सौंदर्य का राधांकन है।

राधा का यही रूप निहालचंद के द्वारा बनाए गए सभी चित्रों में उकेरा गया। राधा के रूप के साथ यमुना, कुंज और वृंदावन की शोभा भी इन चित्रों में साक्षात् जीवंत हो उठी। राधा की तरह ही किशनगढ़ शैली की अन्य नारियाँ भी कोमल देहयष्टि वाली बनाई गई, जिनकी विशेषताएँ थीं। लंबा चेहरा, नुकीली ठोढ़ी तीखी और बंकिम आँखें, घुमावदार भौंहें और घनी केशराशि। कुछ अपवादों के रूप में नारी, मुख गोल भी बनाए गए, जो मुगल शैली की देन कहे जा सकते हैं। राधा और कृष्ण को उकेरते समय तूलिकाकार ने बारीक से बारीक दृष्य को भी जीवंत किया। लहंगा, ओढ़नी और कंचुकी पहने, फूलों पहने, फूलों और अलंकारों से ढ़की तथा हाथों में अधखिले कमल पुष्प थामे किशनगढ़ी नायिका सौन्दर्य की अद्भुत मूर्तिन है। ऐसी नायिका न तो बूँदी कलम में उकेरी गई और न ही गुलेर जैसी कोमल शैली में। ऐसी नहीं है कि कलाकार ने राधा को उकेरते समय केवल उसकी भंगिमा या मुखाकृति पर ही ध्यान दिया हो। सघन जंगल, हरे-भरे बगीचे, बीच-बीच में उभरते अट्टालिका युक्त आवासों की छत, भरपूर तालाब और उसमें डोलती तैरती पतली सी लाल नौका, दूर पीली जमीन पर हरियाली, छोटे छोटे महल, छतरी किनारों पर बसा नगर घाट, क्षितिज रेखा से उभरता सूरज और साँझ की बिखरी हुई लालिमाएँ। सब इन चित्रों में विद्यमान हैं। पानी में सारस, बतखें, मछलियाँ, कमलदल, उसके किनारे केले के वृक्ष और वृक्षों से भी बीच-बीच में निकलते केले के वृक्ष एवं घनी कुंज प्रकृति का सघनतम रूप प्रस्तुत करते हैं और उनमें विभिन्न मुद्राओं में बैठे शुक और मयूर देखते ही बनते हैं। इन चित्रों के रंग चमकदार हैं और रेखाएँ लयात्मक।

किशनगढ़ शैली के चित्रों का प्रथम परिचय एरिक डिकिंसन और कार्ल खंडालावाला द्वारा प्रकाशित किए गए चित्रों के माध्यम से हुआ। किशनगढ़ शैली के चित्र यंत्र-तंत्र बिखरे हैं। निहालचंद के द्वारा सन् 1750 में बनाया गया राधा-कृष्ण का एक अद्भुत चित्र महाराजा बृजराजसिंह किशनगढ़ के संग्रह में है। राधा और कृष्ण दोनों आँखें में आँखें डाले अपलक एक-दूसरे को निहार रहे हैं। हलके नीले वर्ण की मुखाकृति मुस्कराते माधव की है, जिन्होंने पीले रंग की पगड़ी पहन रखी है। लावण्यमयी घने केशवाली पद्माक्षी राधा की नाक में नथनी पहने, अधरों पर हलका स्मित बिखेरती 'बणी-ठणी' बनी है।

किशनगढ़ शैली के चित्रों का विषय प्रधानतरू तो राधा-माधव की प्रेम लीला, प्रिया-प्रीतम मिलन तथा मान चित्रण ही रहा है, तथापि कविवर नागरीदास की प्रिया 'बणी-ठणी' के रूप सौन्दर्य के चित्रण, किशनगढ़ के राजाओं तथा कविवर नागरीदास की प्रिया पासवान 'बणी-ठणी' के रूप सौन्दर्य के चित्रण, किशनगढ़ के राजाओं तथा मुगल बादशाहों के चित्रों तथा ''गीतगोविन्द'' के पदों के चित्रांकन आदि में भी इस शैली के चित्रकारों ने कलम का जादू उकेरा है। झीलों, पहाड़ों वनों, उपवनों तथा पशु-पक्षियों का चित्रण किशनगढ़ एवं रूपनगढ़ के प्राकृतिक परिवेश की देन है। दूर तक विस्तृत झील के सुखद सरोवरों में केलि करते हुए हँस, बत्तख सारस, बक और जलमुर्गियों के अतिरिक्त लहरों में चलती नौकाएं भी सुन्दर एवं आकर्षक ढंग से चित्रित की गई हैं। इस शैली के लघुचित्रों को मोहक एवं प्रभावशाली बनाने के लिए चित्रकारों ने कुंज से झांकती श्वेत मुंडेरों, अट्टालिकाओं, फौव्वारों, केले के वृक्षों और कमलदलों आदि प्राकृतिक उपादानों का भी सहारा लिया है। ये चित्रण किशनगढ़ शैली के विषय को अत्यन्त सजीव विस्तार देते हुए प्रतीत होते हैं। राग-रागनियों पर चित्रांकन, रीतिकालीन कवियों का सा वैभव विलास और परम्परानकूल श्रृंगारिक भावनाओं को आधार बनाकर भी इस शैली के चित्रकारों ने अपनी तूलिका चलाई है। पृष्ठभूमि पर भव्य प्रासादों, केलों के कुंजों, चन्द्रमा तथा तारागण से शोभित चन्द्रमा की चांदनी रात दिखाना भी उन्हें विशेष प्रिय रहा है।

'बणी-ठणी' नागरीदास की प्रेयसी थी। वह विदुषी, अद्वितीय सुन्दरी, संगीत में निष्णांत कवयित्री थी। नागरीदास ने प्रेयसी

के रूप में उसकी पवित्र आराधना की थी। उसके प्रति राजा का आत्मनिवेदन काव्यधारा के रूप में प्रस्फुटित हुआ जिसने भारतीय चित्रकारों को विषयवस्तु तथा कल्पना एवं सौन्दर्य का मुक्त आकाश प्रदान किया। भारत सरकार ने किशनगढ़ की बणी-ठणी शैली में राधाजी का चित्र लेकर 5 मई 1973 को एक डाक टिकट जारी किया। इसकी पचास लाख अनुकृतियाँ प्रकाशित की गई इस टिकट ने पूरे संसार का ध्यान भारत की चित्रकला की ओर खींचा। यह चित्र सन् 1778ई. में किशनगढ़ के कलाकार निहालचन्द ने बनाया था। अंकन की विशिष्टता और रंग-संयोजन की प्रखर अभिव्यक्ति के लिए किशनगढ़ की लघु चित्रकला सर्वप्रसिद्ध हैं। इस शैली में बने चित्रों में पुरुषों की आकृतियाँ समुन्नत ललाटवाली, पतले अधरों, उन्नत नासिका, कालिमा से युक्त दीर्घ नेत्रों, लम्बी अजानु-भुजाओं, सुकुमार अंगुलियों, उन्नत कंधों तथा प्रभावान मुख मण्डल से युक्त होती है।

छरहरे पुरुष शीष पर खुले केश, पेच बंधी पगड़ियां जो प्राय: मोतियाँ अथवा दूधिया रंग की होती हैं। सहित अधरों पर सिन्दूरी रेखा, मादक भाव से युक्त नेत्र, कानों में मुक्ताफल, मणिमालाओं से आच्छादित कंठ, पौरूष को व्यक्त करने वाले फैले हुए उन्नत स्कन्ध तथा अलंकारों से विभूषित एवं दुपट्टे से कसी खीण कटि किशनगढ़ के चित्रकारों की प्रिय अभिव्यक्ति रही है। चन्दन के लेप से पीताभ हुए कोमल नारी शरीर पर बिखरी हुई उन्मुक्त केशराशि कटि प्रदेश तक अधिकार किए होती है। अरुणाभ नेत्रों में काजल की धनी किन्तु आकर्षक रेखा, चमेली की पंखुड़ियों के समान अधर, आगे निकली हुई चिंबुक, वलयितभृकुटि, अत्यधिक क्षीण कटिबंध एवं पांवों को छिपाए लहंगा, कमलकोश सा अर्ध विकसित उरोज प्रदेश मुक्ता मालाओं से ढंका रहता है। कंचुकी और ओढ़नी से लिपटे हुए एवं अलंकारों से सुसज्जित, हस्त में अर्ध मुकुलित कमल कली से युक्त सुकोमल नारी देह कलाकारों की पैनी दृष्टि और अंकन प्रतिभा को उजागर करता है। 'बणी-ठणी' के रूप यौवन की मधुरी से भी यह रेखांकन अंतरंग परिचय करवाता है। श्वेत और गुलाबी रंगों का मिश्रण किशनगढ़ शैली में एक अद्‌भुत एवे आकर्षक प्रभाव पैदा करने में समर्थ हुआ है। अन्य रंगों में हरा, गहरा अन्य रंगों में हरा, गहरा नीला तथ लाल रंग प्रमुख है। कुसुम शैया, फूलों के भार से झुके हरित आभा वाले वृक्ष तथा पृष्ठभूमि एवं सुवर्ण से आलेपित आकाश इन चित्रों की विशेषताएं हैं।

इस चित्र की सर्वत्र बहुत प्रशंसा हुई और उसके बाद दासी प्रेयसी का नाम '' 'बणी-ठणी' प्रसिद्ध हो गया। सब उसे 'बणी-ठणी' के नाम से सम्बोधित करने लगे। चितेरे राजा के अलावा उनके चित्रकार को अपनी चित्रकला के हर विषय में राजा की प्रिय ''दासी'' ''बणी-ठणी'' ही आदर्श मॉडल नजर आने लगी और उसने ''बणी-ठणी'' के चित्र बनाये जो अत्यधिक प्रसिद्ध हुए। इस तरह किशनगढ़ चित्र शैली को ''बणी-ठणी'' के नाम से ही भारतीय चित्र शैली में जाना जाने लगा।

आज किशनगढ़ की ''बणी-ठणी'' चित्रकला शैली विश्व भर में प्रसिद्ध है। ''बणी-ठणी'' का पहला चित्र तैयार होने का समय संवत 1755-57 है। आज बेशक राजा द्वारा अपनी दासी पर आसक्ति व दोनों के बीच प्रेम को लेकर लोग किसी भी तरह की प्रतिक्रिया व्यक्त करे या विश्लेषण करे पर किशनगढ़ चित्रकारों के लिए उन दोनों का प्रेम वरदान सिद्ध हुआ क्योंकि यह विश्व प्रसिद्ध चित्रशैली भी उसी पवित्र प्रेम की उपज है। इस चित्रशैली की देश विदेश में अच्छी मांग है। अध्यात्म और कला के संयोजन से विकसित किशनगढ़ की शैली ने विश्व कला जगत के मंच पर अपने सौंदर्यबोध का जो परचम फहराया है उससे भावी पीढ़ियों के लिये यह प्रेरण स्त्रोत बनी है।

वरिष्ठ व्याख्या- इतिहास, सेन्ट्रल एकेडमी टीचर्स ट्रेनिंग महाविद्यालय, प्रगति नगर, कोटड़ा, अजमेर (राज.) 354001
मोबा. 09414866100

■

शोध पत्र

सूफ़ी संगीतज्ञ अमीर खुसरों का भारतीय संगीत में योगदान

(1253-1325 ई.)

संगीता सक्सेना

भारतवर्ष, जिसे मनुस्मृति के प्रथम अध्याय में आसेतु हिमालय एक भूखंड व श्रेष्ठ आर्य संस्कृतियुक्त व्यक्तियों से सम्पन्न मान्य किया गया है अत: सनातन धर्म के आदि ग्रन्थों की पृष्ठभूमि में मुखर अध्यात्म व दर्शन का सबल बन गया।

इसी प्राकृत भाषा व संस्कृति की षड्रूपी आध्यात्मिक धारा में संगीत का माधुर्य जहां सरस्वती की वीणा, नारद की एकतंत्री वीणा, शिव का डमरू, गणेश की मृदंग एवं कृष्ण की बांसुरी के सांगीतिक साहचर्य में प्रवाहमान होता रहा था वहीं शताब्दियों एवं सहस्त्राब्दियों के कालयापन में अनेक वाद्ययंत्र और सामगान से लेकर जातिगायन व रागों में प्रबंध, तराना, ध्रुवपद, धमार, त्रिवट, टप्पा, ठुमरी व ख्याल आदि शैलियों का विकास होता चला गया। इसे भारतीयता के क्रम में हिन्दू संगीतज्ञों के साथ-साथ मध्य एशिया से प्रसूत भारतीय सूफ़ी संगीतज्ञों ने भी विशेष योगदान अर्पित करके इतिहास चर्चित बनाया।

प्रस्तुत शोधपत्र दिल्ली सल्तनतकाल में 'हिन्दुस्तान का तोता' की संज्ञा से विभूषित एवं अपने फ़ारसी ग्रन्थ 'मिफ्ता-उल-फुतूह' में भारत वंदना करने वाले सूफ़ी दार्शनिक, इतिहासकार, काव्यमनीषी व निष्णात संगीतज्ञ अमीर खुसरो के सूफ़ी दर्शन का विशेष योगदान विवेचित है जिसकी समता समय-समय पर भारत के अनेक रचनाकारों, कवियों व संगीतज्ञों के साथ-साथ विशेष रूप से आधुनिक समय के संगीत उपासक व इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संगीत विभागाध्यक्ष पं. रामाश्रय झा 'रामरंग' की रचनाओं में यत्र-तत्र मुखरित हो जाती है।

अमीर खुसरो और दिल्ली दरबार-

''खुसरो पाती प्रेम की बिरला बांचे कोय
वेद कुरान पोथी पढ़े प्रेम बिना का होय

जैसे सूफी कलाम लिखने वाले अमीर खुसरो अब्दुल हसन यमीनुद्दीन ख़ुसरो के पिता सुल्तान बलबन के दरबारीथे अस्तु अमीर खुसरो को बाल्यकाल से सल्तनत के दरबारी वैभव भाषाई बहुमुखी व्यक्तित्व व भारतीय संगीत तथा काव्य सृजन की साधना की अनुकूलता प्राप्त हुई। खुसरों को प्रारंभ से ही बलबन का राज्याश्रय प्राप्त था बाद में गुलाम घराने का अंत होने से सल्तनत खिलजी वंश के हाथों में चली गई और खुसरो को खिलज़ी काल में भी राज्याश्रय प्राप्त रहा उन्होंने सूफी सिलसिले के पीर ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया के शिष्यत्व में सूफी दर्शन तसबुक का ज्ञान ही प्राप्त नहीं किया वरन् सात सुल्तानों के दरबार में अपनी निजी सेवाएं अर्पित करके इतिहास से शोध रुचि का स्थान भी अर्जित कर लिया।

भारतीय संगीत में अमीर खुसरो का योगदान-

भारतीय संगीत के क्षेत्र में अमीर खुसरो का अविस्मरणीय योगदान रहा है। संगीत में निष्णात होने के कारण अलाउद्दीन खिलजी ने अमीर खुसरो को अपना दरबारी गायक नियुक्त कर दिया था। खुसरो देवगिरी के दरबारी गायक गोपाल नायक की संगीत विद्वता से भलीभांति परिचित थे एवं उन्हें छलपूर्वक संगीत प्रतिस्पर्धा में हराकर दिल्ली ले आए थे। यहाँ उन्होंने गोपाल नायक के सानिध्य में संगीत के क्षेत्र में कई नवीन कार्य किए। अमीर खुसरो में दक्षिणात्य वीणा में 4 तार के स्थान पर 3 तार लगाए और उसे सहतार की संज्ञा दी। फारसी में सह का अर्थ तीन होता है। सहतार धीरे-धीरे सितार हो गया। गायन के क्षेत्र में खुसरों को कव्वाली तथा तराना शैली का आविष्कारक कहा जाता है। अमीर खुसरो ने भारत और फारस के संगीत मिश्रण से कई नए राग बनाए जिनमें पूर्वी पुरिया साज़गिरी, उश्शाक, जिला तथा शहाना आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। गोपाल नायक द्वारा गाए रागों व बंदिशों से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण खुसरो ने राग, स्वर व ताल तो ग्रहण कर लिए किन्तु उनकी भाषा का ज्ञान न होने से उन्होंने उन रागों में

स्वर-तालबद्ध रचनाओं में तोम, तनोम, तनन, दानी, तदानि, ओदानी, तदारे जैसे निरर्थक बोलों की सहायता से तराना नामक नई गायन शैली ईजाद की जो कि आज भी संगीत रशिकों के मध्य अत्यन्त लोकप्रिय है। धीरे-धीरे इसमें सितार के बोलों दिर-दिर आदि का प्रयोग भी किया जाने लगा। इस तराना शैली में मध्य लय में गायन करते हुए धीरे-धीरे लय बढ़ाई जाती है और गायक अपनी क्षमतानुसार अतिद्रुतलय तक तराने का समापन करते हैं।

आधुनिक काल में खुसरो की तराना शैली को जहां शास्त्रीय संगीतज्ञों ने खुले मन से अपनाया वहीं कब्बाली का गायन करने वाला एक विशेष वर्ग तैयार हो गया और कव्वाली को भारतीय संगीत में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ जिसका भी यहाँ वर्णन करना समीचीन है। आज के अति आधुनिक परिवर्तनशील दौर में भी कव्वाली प्रचार में है औ अत्यधिक लोकप्रिय है। कब्बाली की लोकप्रियता में उसके सूफ़ी मत और उससे प्रभावित इस्लाम का सर्वाधिक योगदान रहा है।

खुसरो की रचनाओं में सूफ़ी दर्शन-

रेख़्ता, सधुक्कड़ी या हिन्दवी के प्रथम मुस्लिम कवि कहे जाने वाले अमीर खुसरो ने अपनी अधिकतर रचनाएं अपने आध्यात्मिक गुरु ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया पर न्यौछावर कीं। जिस दिन उन्हें निजामुद्दीन औलिया का शिष्यत्व प्राप्त हुआ, उस दिन होलिकोत्सव था और खुसरो ने इस हिन्दू उत्सव पर सूफ़ियाना रंग से सराबोर कलाम लिखा-

'आज रंग है, ऐ मां, रंग है री,
मेरे मेहबूब के घर संग है री'

जो कि आज भी कव्वाली की हर महफिल में सुनने को मिलती है। खुसरो ने अनेकानेक दोहे कह मुकरियां, उलटबांसियां और छंदबद्ध पहेलियां भी लिखीं। खुसरो के सूफी कलामों को गाने वाले कव्वाल मानते हैं कि कव्वाली अर्थात् अपनी दुआ को संगीत के जरिए खुदा तक पहुंचाना है। खुसरो ने इन रचनाओं में आत्मारूपी प्रियतमा का परमात्मा रूपी साजन या पिया से मिलन को सांसारिक बातों की भाषा में काव्यबद्ध किया है। इनकी अनेकों रचनाओं को हिन्दी फिल्मों में बहुत सम्मान प्राप्त हुआ, इनके कलामों को संगीतकारों और कव्वालों ने ऐसी धुनों में स्वरबद्ध किया कि वे जनसाधारण के मन पर अमिट छाप छोड़ कर अमर हो गईं। इनमें से कुछ हैं-

1. काहे को ब्याही बिदेस
ओ लखी बाबुल मोरे
काहे को ब्याही बिदेस

2. जेहाले-मिस्कीं मकुन तग़ाफुल,
दुराये नैना बनाए बतियां
कि ताब-ए-हिज़ां न दारम-ए-जां
न लेहु काहे लगाए छतियां

3. ऐरी सखी मोरे पिया घर आऐ
भाग लगे इस आंगन को
अपने पिया के मैं बल-बल जाऊँ
चरन लगायो निर्धन को...

4. छाप-तिलक सब छीनी रे
मोसे नैना मिलाय के
बल-बल जाऊँ मैं तोहरे रंगरेजवा
अपनी सी रंग दीन्ही रे
मोसे नैना मिलाय के...

खुसरो की रचनाओं जैसा दर्शन पं. रामाश्रय झा 'रामरंग' की भी कुछ रचनाओं में मिलता है जैसे-

स्थाई- चुनरिया लादे रे मोरे सैया
पीली-भीली और रंग ना
लेहुँ रामरंग रंगी भींगी-मोरे सैंया...

अंतरा- चुनरी पहिर तोरे संग डोलूं
हरि रस की रस बतियां बोलूं
मान ले मोरी कही री मोरे सैंया...

स्थाई- रंग दे रंग दे रंगरेजवा
मोरी चुनरिया रंग सांवरिया
गुन मानूं तोरे मोरे मितवा

अंतरा- पायन परूं तोरे रंगरेजा
रामरंग रंग दे हमरी अंगिया को मोरे मितवा...

साररूप में समकालीन फारसी तवारीख़कार जियाउद्दीन बरनी के इस कथन को उद्धृत किया जा सकता है कि अमीर खुसरो की सूफी रचनाओं से खिलजी दरबार सम्मोहित हो जाता था और उनकी पहेलियों में दरबारी हास्य रंग से सराबोर हो जाते थे।

संदर्भ :-

1. अभिनव गीतांजलि भाग:5- पं. रामामश्रय झा रामरंग, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद-2001
2. अभिनव गीतांजलि भाग:4- पं. रामामश्रय झा रामरंग, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद-1995
3. सैयद डॉ. अतहर अब्बास रिज़वी-खलजी कालीन भारत, अलीगढ़ मुस्लिम वि.वि.- 1958
4. डॉ. हरिशचन्द्र श्रीवास्तव- राग परिचय भाग : 2, संगीत सदन प्रकाशन इलाहाबाद

- शास्त्रीय गायिका, शोधार्थी, कोटा (राजस्थान)

आलेख

आश्रम भजनावलि का सुनहरा इतिहास

माधवी नानल

महात्मा गाँधी जी के साबरमती आश्रम में होने वाली संगीतमयी प्रार्थना के बारे में आज मैं ये विचार लिख रही हूँ क्योंकि यह बताने का सही समय है। 25 मई, 1913 में गांधी जी ने सत्याग्रह आश्रम की स्थापना की। यह आश्रम अहमदाबाद शहर से चार कि.मी. की दूरी पर था। इसके बाद 17 जून 1917 को साबरमती इस-पवित्र साबरमती नदी के किनारे एक विशाल और शांत परिसर में साबरमती आश्रम का निर्माण हुआ। स्वतंत्रता का पूरा कार्य यहीं से होता रहा।

2018, यह वर्ष दो ऐतिहासिक घटनाओं के लिए हमेशा याद रखा जाएगा। एक तो पूरे भारत में वर्ष 2018से वर्ष 2019 तक महात्मा गांधी जी की 150वीं जयंती पूरे हर्षोल्लास से मनाई जाएगी तथा इसी वर्ष सुरीली भजन परम्परा शताब्दी भी मनाई जा रही है। गांधी जी के जीवन का भजन परम्परा से बहुत ही गहरा संबंध है इसलिए इन दोनों विषयों की जानकारी देना और चर्चा करना आज बहुत आवश्यक है ताकि भावी पीढ़ी को उन्नति के मार्गों पर एक सही दिशा प्राप्त हो सके।

गांधी जी का कहना था कि अध्यात्म से शक्ति का जन्म होता है तथा जीवन में नम्रता की वृद्धि होती है। आत्मदर्शन, ईश्वर के साक्षात्कार तथा मोक्ष के लिए यह अध्यात्म एक सुगम राह है। धर्म क्या है- आत्मा की दृष्टि से पाली गई नीति, आत्मबोध, आत्मज्ञान धर्म है। सत्य ही सर्वोपरि है जिसमें अहिंसा, ब्रह्मचर्य, सभी का समावेश होता है। उस सत्य को उजागर करने के लिए सिर्फ हृदय नहीं, वाणी की भी उतनी ही आवश्यकता है। वही सत्य यानी परमेश्वर जब वाणी द्वारा उजागर होता है तो प्रार्थना या भजन बनकर प्रगट होता है।

महात्मा गांधी वैष्णव सम्प्रदाय में जन्में, उन्हें जनम सये दाय-माय से बहुत प्यार मिला। जब गांधी जी बचपन में छोटी-छोटी बातों से डर जाते थे तो दायमां कहती थी- डर को भगाने का रामबाण इलाज है रामनाम। कहते हैं बचपन में कहे गए, डाले गए संस्कार कभी नष्ट नहीं होते। गांधी जी के लिए रामनाम अमोघ शक्ति बन गया। उन्होंने अपने जीवन काल में बचपन से अनेकों ग्रंथों का अध्ययन किया था। तुलसीदास की रामायण पढ़ी। भागवत जैसे ग्रंथ से धर्मरस पैदा किया। जब भारत भूषण पंडित मदन मोहन मालवीय जी के मुख से भागवत सुनी तो उन्हें महसूस हुआ कि ऐसे भक्त से यदि बचपन में भागवत सुनी होती तो इसके प्रति प्रेम कितना गाढ़ा हो जाता- इसलिए उन्होंने अपने साबरमती आश्रम में रहने वाले छोटी उम्र के बच्चों से लेकर सभी सदस्यों से प्रार्थना, भजन.... का क्रम शुरू करवाया।

गांधीजी जब राजकोट में थे तभी अनायास ही उन्हें सब संप्रदायों के प्रति समान भाव रखने की शिक्षा मिली। बचपन से ही उनके माता-पिता उन्हें वैष्णव मंदिर में, शिवालय में, राम मंदिर में ले जाया करते थे। घर पर भी गांधी जी के पिता से मिलने सभी संप्रदाय के लोग मिलने आने से उन्हें सभी को सुनने का मौका मिला उस वजह से सभी धर्मों के प्रति उनके हृदय में समान भाव पैदा हुआ।

गांधी जी का कथन था कि सभी संप्रदायों को समभाव से देखते हुए मेरे अंदर ईश्वर के प्रति अलग आस्था थी। उन्हें महसूस होता था कि यह संसार नीति पर टिका है और नीति मात्र का समावेश सत्य में है। इसलिए सत्य को तो खेजना ही होगा। दुनिया में सार्थक और सच्च जीवन उसी का है जो अपकार करने वाले के प्रति भी उपकार करता है। यहीं से गांधी जी की यात्रा शुरु हुई : 1. सत्य, 2. अहिंसा, 3. स्वच्छता, 4. सर्वधर्म समभाव की....।

गांधी जी का स्वयं का अनुभव है की, इसलिए जितना सत्य हमारा खाना-पीना, चलना-बैठना, उससे भी अधिक सत्य है ईश्वर स्तुति-उपासना, प्रार्थना। यह सिर्फ वाणी-विलास नहीं होती, इसका मूल कंठ नहीं, हृदय है। जो मनुष्य हृदय की निर्मलता को पा लेता है तथा अपने तारों को सुसंगठित रखता है और फिर जो सुर निकलते हैं वे गगनगामी होते हैं। यह चमत्कार नहीं अपितु स्वभाव से ही अद्‌भुत

वस्तु है। इसलिए विकार रूपी गंदगी को दूर करने के लिए हार्दिक उपासना ही एक रामबाण औषधि है। गांधी जी कहा करते थे कि श्रद्धापूर्वक अंत:करण से की गई प्रार्थना को ही ईश्वर सुनता है। अंतर्नाद को सुनने से आनंद मिलता है उसी प्रकार नादमय संगीत को सुनने से ईश्वर की अनुभूति होती है।

सेवा और स्वच्छता को गांधी जी ईश्वर की पहचान मानते थे। जैसे-

'श्रीरामचंद्र कृपालु भज मन', 'हे गोविंद हे गोपाल', 'मैंने गोविंद लिनो मोल', 'रघुवर तुमको मेरी लाज', 'सुने री मैंने निर्बल के बल राम', 'घुंघट के पट खोल', 'साधो मन का मान त्यागो', 'पायो जी मैंने रामरतन धन पायो' इत्यादि, मेरे तो गिरिधर गोपाल जैसे अनेकों भजन सभी के श्रवण किए हुए हैं। ये भजन कहीं भी और कभी भी गाए जाते थे। इनकी स्वररचना (संगीतकार कौन थे), किसने की और ये सभी भजन आज भी सभी के हृदय में कैसे वास कर रहे हैं इस विषय पर एक घटित इतिहास है।

जैसा कि आप सभी जानते हैं महात्मा गांधी जी ने वर्ष 1913 में साबरमती आश्रम की स्थापना की। उपरोल्लिखित सभी भजनों को आज से करीबन 100 वर्ष पूर्व हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी के साबरमती आश्रम में गाने की परम्परा स्थापित हुई थी। इन्हीं भजनों के कारण आश्रम भजनावलि के विशाल इतिहास ने जन्म लिया। इन भजनों के अंतर्गत हमें संगीत व समाज, संगीत व मन:शांति, संगीत से जुड़े हुए लोगों हृदयों को एकजुट रखने की शक्ति और स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए इन भजनों का उपयोग प्रत्यक्ष रूप से देखने को मिला। पिछली दो पीढ़ियों का यह अनुभूतिक इतिहास है और सत्य है। हमारी पीढ़ी ने इसका फल चखा है। किंतु नई पीढ़ी को इसकी कुछ भी जनाकारी नहीं है।

महात्मा गांधी जी के जवीन की कुछ मार्मिक, न भूलने वाली घटनाओं को यदि हम याद करें, तो वर्तमान में उन क्षणों की अनुभूति कर सकते हैं। मैं आपको गांधीजी एवं गायनाचार्य पलुसकर जी के निकटतम सम्बन्धों के बारे में बताना चाहूंगी। पलुसकर जी की गायकी गांधीजी ने अनेकों बार श्रवण की थी और यह अनुभव किया था कि उनकी गायकी से लोगों को मन्त्रमुग्ध करने की अद्‌भुत शक्ति है। संगीत भक्तिमार्ग के लिए अनुपम देन है, साथ ही यह जीवन में थकान, निराशा दूर करने की एक संजीवनी है। इसलिए, उन्होंने संगीत को आश्रम की दिनचर्या का अभिन्न अंग बनाया।

महात्मा गांधी तथा गायनाचार्य पलुसकर जी इन दोनों की कर्मभूमि की दिशाएं अलग थीं परंतु मंजिल एक थी। गांधीजी की लड़ाई स्वतंत्रता के लिए थी तथा पलुसकर जी ने अपनी संगीत कला से मिली-प्रतिष्ठा को घर-घर तक पहुंचाने का प्रण लिया था। दोनों में बहुत ही साम्यता थी। गांधीजी ने पलुसकर जी की गायन शक्ति तथा उस संगीत का समाज पर हुए प्रभाव का अच्छा अनुभव लिया था। गांधीजी के आश्रम में दोनों समय प्रार्थना अनिवार्य थी और उसके लिए भावपूर्ण संगीत भी उतना ही महत्व रखता है यह बात उन्हें मान्य थी। अच्छे कार्यों के लिए पूर्ण समर्पित लोगों की अत्यंत आवश्यकता थी और पलुसकर जी की कार्यपद्धति अनुशासित थी इसलिए गांधी जी को पूर्ण विश्वास था कि उनके गांधर्व महाविद्यालय में पलुसकर जी की तरह पूर्ण समर्पित व चरित्रवान संगीतज्ञ अवश्य मिलेंगे। इसलिए गांधीजी ने पलुसकर जी से एक ऐसे ही शिष्य की मांग साबरमती आश्रम के लिए की जो तुरंत पूरी हो गई। पलुसकर जी ने अपना सर्वोत्तम शिष्य नारायण मोरेश्वर खरे जी को हमेशा के लिए साबरमति आश्रम में भिजवा दिया। यहीं से शुरू हुआ सही अर्थों में संगीत का सफर।

पलुसकर जी व अन्य स्वतंत्रता प्राप्ति में चुनिंदा लोगों ने (उदा. रवीन्द्रनाथ टैगोर) तथा उनके शिष्यगणों ने पूरे भारत में घर-घर तक इस परम्परा को पहुंचाने का कार्य शुरू किया। हम सभी जानते हैं यदि हमारी भारतीय संस्कृति की लौ जलाना हो तो उसमें स्त्री शक्ति का सबसे बड़ा योगदान रहता है। यह बात पलुसकर जी तथा उनके शिष्यगणों को भी पता थी इसलिए उन्होंने इस संगीत परम्परा को घर-घर तक ही नहीं बल्कि हर घर के रसोईघर तक पहुंचाया ताकि महिलाएं उन भजनों को गुनगुनाएं और उसका आस्वाद घर के सभी बड़े, बुजुर्ग ले सकें।

खरे जी ने लोगों के परिचित रागों का संग्रह करके तथा उसे ही आधार बनाकर भक्ति से भरे भजनों को तैयार करके भारत भर में, रंगभूमि तक लेकर गए। इन रागों की स्वररचना लय-ताल इतनी सरल और सुगम थी कि लोग इसे सहज ही गाने लगे।

साबरमती आश्रम में गाई जाने वाली प्रार्थनाओं के लिए अनेकों भाषा, और विभिन्न धर्मों के संतों की वाणी का चुनाव किया गया। उस वक्त श्री खरे और महात्मा जी साथ-साथ ही थे। उन दोनों का ही मत था कि सभी प्रार्थनाएं, भजन शुद्ध धार्मिकता लिए हुए हो। किसी भी धर्म की निंदा या हीनभावना का समावेश न हो। गांधी जी के जीवन का उद्‌देश्य था, जैसे कि मैंने पहले ही कहा, सर्वधर्म समभाव और विश्वबंधुता रखते हुए देश का विकास हो। नैतिक आचरण प्रबल हो तथा इसी उद्‌देश्य से सभी धर्मों के पंथों की प्रार्थनाएं, और पदों का

भक्ति भाव से गायन करना ही उनका उद्देश्य था।

तुलसीदास, सूरदास, रैदास, गुरु नानक, कबीर, मीराबाई आदि संतों के अतिरिक्त महाराष्ट्र के संत एकनाथ, तुकाराम जी के दोहों का भी चुनाव किया गया तथा सभी पदों को सुंदर रागदारी में तथा उत्कृष्ट संगीत में बांधने का कार्य खरे जी ने किया तथा इन सभी पदों को पलुसकर जी के शिष्यों ने कई महफिलों में गाकर अमर बना दिया, जिसका श्रेय पंडित ओंकारनाथ ठाकुर, पंडित विनायक बुवा पटवर्धन, पंडित नारायण राव व्यास, डी.वी. पलुसकर तत्पश्चात् पंडित कुमार गंधर्व, डॉ. वीणा सहस्त्रबुद्धे को जाता है। ऐसे परम्परागत कलाकारों का बहुत बड़ा योगदान है।

पंडित ना. मो. खरेजी, ने लगभग 400 पदों को संगीत में पिरोया। जिसमें से 200 पदों की नोटेशन सहित दो भागों में दो किताबें प्रसिद्ध हुई हैं। इनमें जानने योग्य बात यह है कि इनमें सम्मिलित सभी पदों व भजनों का नोटेशन पलुसकर पद्धति में किया गया है जिससे उनकी बारीकियों को बिना किसी परिवर्तन के वैसे के वैसे गाया जा सकता है तथा संतों द्वारा रचित भजनों में उनके विचारों को अधिक से अधिक विस्तारित एवं प्रभावी ढंग से ढालकर गा सकते हैं।

कहते हैं, जब आश्रम में सुबह व शाम भजनों का कार्यक्रम होता था उस समय गांधी जी स्वयं उपस्थित रहते थे तथा भजनों के श्रवण का लाभ उठाते थे। खरे जी को गांधी जी ने इतनी बड़ी जिम्मेदारी दी थी कि गांधी जी जहां कहीं भी जाते, खरे जी उनके साथ जाते, चाहे वो दांडी यात्रा हो तथा नियमित रूप से पूर्ण समर्पित भाव से प्रार्थना करवाते। संत नरसी मेहता रचित पद ''वैष्णव जन तो तेणे कहिए'' तथा संत रामदास स्वामी की रामधुन 'रघुपति राघव राजाराम' ये दोनों ही गांधी जी को अत्यंत प्रिय थे। उसी समय आश्रम की प्रार्थना के रूप में संत नरसी मेहता द्वारा रचित 'वैष्णव जन तो तेणे कहिए' का चुनाव किया गया। आपको विदित कराना चाहती हूँ कि वैष्णव जन.... को सुरों में बांधने का कार्य श्री शंकरराव व्यास जी ने किया।

गांधी जी का रामनाम पर अत्यंत विश्वास था। उनका मानना या कि पूरे दिन में कम से कम एक बार राम का नाम अवश्य लेना चाहिए जिससे मन को शांति मिलती है। यदि मनुष्य को काम, क्रोध, मद, मत्सर इन चारों लुटेरों को भूल जाना हो तो सच्चे हृदय से, पूर्ण निष्ठा से राम नाम लेना चाहिए। इसी तात्पर्य से उस समय स्वामी रामदास द्वारा रचित रचना 'रघुपति राघव राजाराम' इस रामधुन का चयन हुआ। यह बताना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि इस रामधुन की संगीत रचना स्वयं गायनाचार्य विष्णु दिगंबर पलुसकर जी ने बनाई। और इस रचना में आगे की दो लाइनें स्वयं गांधी जी रचित थीं- वे थी ईश्वर, अल्ला तेरो नाम,सबको सन्मति दे भगवान। तथा इससे सुरों में भी बांधने का कार्य पलुसकर जी ने ही किया।

संघशक्ति की विजय :

गांधी जी ने इन प्रार्थनाओं की परम्पराओं में सके संघशक्ति के महत्व को समझा और उसे ग्रहण किया। संगीत, संघ की महाशक्ति का महामंत्र बन गया। यह किए गए प्रयत्नों तथा परम्परा को आज भी साबरमती आश्रम और अन्य जगहों पर निभाया जा रहा है। एक देश को सर्वश्रेष्ठ देश बनाने में उसकी संघटनाएँ, संघशक्ति, देशभक्तिपूर्ण वातावरण तथा समाज के विभिन्न इकाइयों की गुणवत्ता का उपयोग करना अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य होता है। गांधी जी को प्रार्थना और राम नाम की शक्ति पर केंद्रित ये सभी बिन्दु अपने अनुयायियों से अपेक्षित थे, ''जो उन्होंने सिद्ध कर दिखाया।''

गांधी स्मारक निधि, मुंबई का योगदान उनके द्वारा महात्मा गांधी के भजनों की सीडी का निर्माण।

श्रीमती उषा गोकाणी (महात्मा गांधी की पौत्री), संस्था की ट्रस्टी व अध्यक्षा द्वारा महात्मा गांधी के भजनों की सीडी तैयार करने के पीछे उनका उद्देश्य तथा कहना था कि आज के युग में नई पीढ़ी भावी भारत की संरक्षक होगी। इसलिए प्रार्थना, रामनाम व उसके साथ संगीत का महत्व उनको समझाना अत्यंत आवश्यक है। संतों की विभिन्न वाणी को सुंदर व सरल तरीके से इस पीढ़ी को समझाना भी उतना ही आवश्यक है। गांधी जी के विचार व स्वतंत्रता नीति के प्रयासों को एक अनूठे ढंग से प्रस्तुत करने की कोशिश इस सीडी द्वारा की गई है। मुझे इन मूल स्वरचित पदों का विशेष आकर्षण है, एक तो मेरे गुरुजी ने मुझे मूल तरीकों से ही इन पदों को सिखाया तथा दूसरा, मेरे पिताजी गांधी जी के समय आज़ादी की लड़ाई में स्वतंत्रता सैनिक थे। मेरे घर में बचपन में ही इन सारे पदों को मैंने कई बार आत्मसात किया है।

इस सीडी में से सभी भजन (दस भजन) मैंने गाए हैं। आवाज़ के बादशाह अमीन सायानी जी ने प्रस्तावना की है और रामनाम का महत्व स्वयं गांधी जी की आवाज से सभी को समझाया गया है।

आज भजन प्रस्तुति का ढंग बदल गया है तथा जो उनकी वास्तविक गायन पहचान थी उसे भी बदलने का प्रयास किया जा रहा है। यदि आज उसकी वास्तविक गायन पद्धति को संभाला नहीं गया तो कुछ वर्षों में इन भजनों की स्वररचना कमजोर और पूर्ण रूप से नष्ट हो जाएगी। आश्रम भजनावलि एक सुनहरा इतिहास है जिसे इस सीडी के माध्यम से संभाल कर रखने का प्रयास किया गया है।

- मुम्बई, 9869484299

■

आलेख

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में लोक कलाओं की अस्तित्व बोध की चिन्ताएं

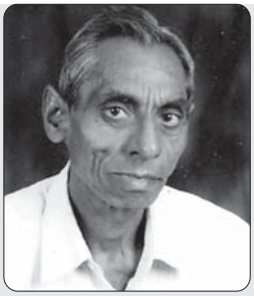

राधेलाल बिजघावने

आधुनिकयुग में लोक कलाओं के विकास की चिन्ताएं हर आदमी के मन में होना नितांत आवश्यक है। लोक कला में लोक बोध का अस्तित्व का अहसास भ्रामक हो सकता है और शायद नहीं भी। क्योंकि आधुनिकता की चकाचौंध से भ्रामक विश्वासों की व्यापकता का संज्ञान होता है।

जब से आदिवासी क्षेत्रों, गांवों, कस्बों का निर्माण हुआ है तभी से लोक संस्कृति की स्थापना की कल्पनाशीलता की पुष्टि की जाना स्वाभाविक ही है। गांवों, कस्बों और ग्रामीण क्षेत्रों का समुचित विकास कभी भी योजनाबद्ध तरीके से नहीं हुआ। इसलिए बहुत सी कठिनाइयां, दुख पीड़ा, अभाव, भूख, आर्थिक तंगी इन्हें सहते रहना है। इससे लोक मानस में खुशियां कभी कभार कुछ क्षण और दिनों के लिए आती थी। तकलीफो तथा दुखों का सिलसिला पुन: शुरु हो गया है। इसलिए आदिवासी क्षेत्रों, गावों, कस्बों में निवास करने वाले लोगों को तकलीफदेह समय जीते हुए भी उन्हें हंसता, खुशहाल जीवन जीने की उत्कट इच्छा होनी ही है ताकि बदलाव की बेचैनी में नये समय की संभावना उनके मन में होना स्वाभाविक ही है।

लोक कला एक ऐसा माध्यम है जो अभाव, तकलीफों में जीते लोगों को आपस में जोड़ती है। एक दूसरे की तकलीफों को कहने और संवाद या विवादों का हल ढूंढने के लिए उन्हें एक दूसरे से संवाद करने का मौका मिलता है। क्योंकि लोक कलाओं के आयोजनों पर तमाम व्यस्तता के बीच भी लोग एकत्रित होते हैं आपस में हिलते-मिलते हैं और एक दूसरे की तकलीफों का निवारण करते हैं। लोक आयोजनों से दैनिक कार्यों से मुक्ति मिलती है। वे खुशियों का अनुभव करते हैं। वक्त छीनकर लोग अपने भीतर की कलाओं का प्रदर्शन करते हैं। यह तय हैं कि हर अच्छे बुरे आदमी के पास भी कोई न कोई कला होती ही है। कलाविहीन कोई भी मनुष्य दुनिया में नहीं होता है। यह दूसरी बात है कि कुछ लोगों को अपनी कला प्रदर्शित करने का अच्छा मौका मिलता है और कुछ लोग कलाहीन होकर, महान कलाकर के रूप में उपस्थित होते हैं। इसलिए कला की वास्तविक छवि एवं प्रभाव क्षतिग्रस्त होते हैं। लोक मानस में लोक कला नैसर्गिक रूप से उपस्थित होती है। इस संबंध में लोक कलाकारों को कला केन्द्रों में प्रवेश लेकर प्रशिक्षण लेने की कतई आवश्यकता नहीं होती। समाज में जो भी लोकोत्सव होते हैं और उन लोकोत्सव एवं धार्मिक आयोजनों में नयी पीढ़ी के युवक कलाकारों के कलात्मक क्षमताओं से प्रभावित एवं उत्प्रेररित होकर स्वयं सीख लेते हैं इनकी बारीकियों को ध्यान से देखते हैं और इसका प्रेक्टिकल अनुभव भी लोकोत्सवों एवं धार्मिक कार्यक्रमों में करते हुए अपनी कमी एवं गलतियों का सुधारकर उत्कृष्टता प्राप्त कर लेते हैं।

लोक कलाएं परंपरागत भी आंतरित होती हैं एवं संगीतकार की संतानें संगीत की शिक्षा अपने बड़े बूढ़ों से स्वयं ही बिना प्रशिक्षण एवं मार्गदर्शन के प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए लोक कलाएं पीढ़ी दर पीढ़ी आंतरित होती है और इसमें जो भी नये प्रयोग होते हैं वे भी जुड़ते चले जाते हैं। बिना शिक्षण प्राप्त किये कोई कलाकार लोक कला के विशेषज्ञ होते हैं। इनमें कोई कमी नहीं होती बल्कि स्पेशलाइजेशन होता है। इसलिए लोक कला कभी समाप्त नहीं होती। बल्कि हर पीढ़ी और समय के परिवर्तन अनुसार इसमें और अधिक गुणात्मकता और कलात्मकता जुड़ती चली जाती है। इसलिए हर पीढ़ी दर पीढ़ी लोक कलाएं ज्यादा प्रभावी एवं कलात्मक होने से जन जन के मन में गहरा असर छोड़ती है। जहां तक लोक कलाओं के क्षेत्राधिकार के बारे में अनुभव कर विस्तार से विचार किया जाता है तो लगता है लोक कलाएँ भी कई प्रकार की होती है। अपनी रुचि के अनुसार लोग इनको स्वयं प्राप्त कर लेते हैं।

संगीत कला, चित्रकला, मूर्तिकला, भित्तिचित्र, तथा गीत, मृदंग वादन, मंजीरे, भजन, नाविक के गीत, पनिहारिन के गीत, हाथ चक्की चलाती औरतों के लोक गीत, विवाह गीत, जच्चा बच्चा के गीत कार्यक्रमों में गाये जाने वाले गीत। मांझी के गीत, खेतिहर किसानों के गीत, लोक गीत परंपरा को कलापूर्ण बनाते हैं। क्योंकि इनके स्वर बहुत मीठे, परंपरागत, आकर्षक होते हैं। इसलिए लोक गीत, लोक कला, लोक परंपराएं कभी समाप्त नहीं होती क्योंकि यह सब कार्यक्रम पीढ़ी दर पीढ़ी आंतरित होती हैं। इसलिए ये जनरूचि तथा जन आकांक्षा का जरूरी हिस्सा बन जाती है।

आम धारणा यह रही है कि आधुनिकता की वहज आम लोगों के मन में लोक कला के प्रति अभिरुचि कम होते जा रही है। इस कारण से लोक कलाएं धीरे धीरे समाप्त होने की कगार पर हैं। परंतु ऐसा कतई नहीं कि लोक कलाएं समाप्त हो रही हैं। और समयानुसार परिवर्तन की वजह लोक कलाएं समाप्त हो रही हैं। यह एक भ्रामक सत्य है। यह संभव है कि आधुनिकता की वजह एवं साधनों के विकास के साथ हैं जो लोक कलाओं में नया युग जुड़ जाता है और उसके स्वरूप में उत्कृष्टता आती जाती है इसलिए जब से मनुष्य गांवों, कस्बों और आदिवासी क्षेत्रों में निवास कर रहा है, तब से अभी तक लोक कथाएं जीवित हैं। और भविष्य में जब तक लोकाचंल अस्तित्व में रहेगी, लोककला और अधिक आकर्षक होती जायेंगी।

यह जरूर है कि शिक्षा और समय स्थितियों के बदलाव के

साथ लोक कलाएं समाप्त हो रही महसूस होती है- जैसे सांझा कुवाँरी लड़कियां करती है हर गाँव से एकत्रित होती हैं अच्छे पति की कल्पना को लिये स्वप्न बिम्ब सजाती हैं। अब चूंकि, लड़कियां अपनी शिक्षा अनुरूप अपनी इच्छा के पति के स्वप्न बिम्ब देखती हैं। पढ़ाई में व्यस्त भी होती हैं, इसलिए ऐसे कार्यक्रम में शामिल नहीं हो पाती।

बरसात में नरवत-पूजा भी कुंवारी लड़कियां करती हैं जिसमें से शिव पार्वती की आराधना कर अच्छे पति प्राप्ति की कामना करती हैं। दीपावली पर गोवर्धन पूजा की परंपरा रही है। वे जानवरों के गोबर से गोवर्धन पर्वत बनाते हैं। कृष्ण का चित्र और ग्वालों, गोपियों के साथ चांद तारे बनाते हैं और पूजा करते हैं।

लेकिन अब गांवों में मवेशी कम हो चुके हैं। इसलिए यह परम्परा भी लगभग समाप्त हो गई है।

गरबा पूजन की परंपरा भी औरतों में प्रचलित रही है। गरबा मिट्टी की हांडी का करवां बनाकर ग्रामीण महिला उसमें दीप जलाते हैं और गरवां गीत गाती हैं। यह एक तरह का अनुष्ठान है और अभिलाषाओं का प्रसाद भी।

गांवों में डांडिया और मंजीरों के साथ समूह गायन की परंपरा रही है। हारमोनियम, ढोलक की थाप के साथ। यह भी समाप्त हो रही है प्रशिक्षित इसके लिए समय नहीं दे पाता है।

देवी पूजन के साथ देवी गीतों का गायन बड़ा पारंपरिक रहा है जिसे लोकाचंलों में पसंद किया जाता रहा है। परंतु अब देवी देवताओं के प्रति आदमी इतना व्यस्त हो गया है कि प्रशिक्षित पीढ़ीयों की रुचि नहीं रही। इसलिए भी कि वे अपने केरियर के लिए ज्यादा सचेत हो चुके हैं और सारा समय आर्थिक लाभ एवं केरियर के लिए समाप्त करते हैं। इसलिये देवी देवताओं के प्रति उनके मन में आकर्षण कम हो गया है। आस्था भी घट रही है।

राजाओं के राज्यों में गुफाएं बनाकर भित्ति चित्रों के निर्माण की परंपराएं रही हैं जो आज भी अजंता एलोरा, भीम बैठका जैसी ऐतिहासिकस्थानों पर मौजूद हैं। अब भित्ति चित्रों की पेंटिंग की परंपरा नहीं रही परंतु इन्हें देखने की रुचि पर्यटकों के मन में जिन्दा है।

सिंधु नदी के कछारी क्षेत्रों में आर्यों ने कई तरह की कला परंपरा को नया रूप दिया। मूर्तिकला, संगीतकला, मिट्टी के बर्तन एवं मूर्तियों का निर्माण जो ऐतिहासिक है। इनकी लोकाचंलों की परंपरा और लोक कला, समय के विकास को प्रदर्शित करती है, बुंदेली, राजस्थानी, पंजाबी, आदि लोककला आज भी प्रभावित करती है।

इसी तरह खजुराहो की मूर्तिकला एक ऐसा उदाहरण है जिसके अनुसार आज भी मूर्ति कला के स्वरूप में उत्कृष्टता आई है। धर्म मंदिरों में मूर्ति कला का सर्वाधिक विकास हुआ है।

बौद्ध कला में भी मूर्तिकला एवं चित्र कला का जो विकास हुआ है वह भी अभूतपूर्व ही है।

कुल मिलाकर यह कहा जाना असंगत नहीं कि लोक परंपराओं के साथ लोक कलाएं पीढ़ी दर पीढ़ी आंतरित होती है, जो समाप्त नहीं होना। इसके स्वरूप में समय संदर्भों के अनुरूप परिवर्तन होता ही रहता है। जब तक लोकांचल रहेंगे, लोक कला समाप्त नहीं होगी। क्योंकि ये ही देश की मौलिक पहचान है। और देश की मौलिक पहचान को मिटाया नहीं जा सकता और संवारा जाता है। नृत्य कला का अपना इतिहास है। आज भी नृत्य कला में कई तरह के प्रयोग हो रहे हैं। ताजमहल बनाने वाले कलाकारों के हाथ कटवा दिये थे, ताकि वे दूसरा ताजमहल का निर्माण नहीं करें। परंतु इसकी कलात्मकता समाप्त नहीं हुई क्योंकि, कलात्मकता परंपरागत आंतरित होने से उन कलाकारों के बच्चों में स्वत: स्फूर्त हो गई थी। यह बात दूसरी है कि दूसरा ताजमहल तैयार करने की किसी में रुचि और योजना ही नहीं रही। क्योंकि यह बहुत बड़ी पूंजी की मांग करती है। कोणार्क का सूर्य मंदिर लोककला का अद्‌भुत नमूना है।

- ई-8/73, भरत नगर, (शाहपुरा), अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462034
मो. 9826559989

A2 अकादमी के द्वारा नाटक का मंचन

A2 अकादमी के द्वारा बहुप्रतिक्षित नाटक कुकर फट सकता है एवं अपहरण भाईचारे का मंचन मुख्य अतिथि मेडिकल कॉलेज के प्राचार्य डॉ गिरीश वर्मा एवं अध्यक्ष वरिष्ठ नाट्य निर्देशक अरविन्द शर्मा के सानिध्य में संपन्न हुआ। जहाँ राम शर्मा 'कापरेन द्वारा लिखित 'कुकर फट सकता है' नाटक में कोचिंग स्टूडेंट्स में बत्ती अवसाद की स्तिथि के दौरान होने वाली विभिन्न परिस्तिथियों को सिलसिलेवॉर तरीके से अभिनेताओं ने अपने अभिनय के जरिये प्रस्तुत किया और दर्शकों को ये सोचने पर विवश किया कि बच्चो के ऊपर अनावश्यक दबाव उन्हें किस अंजाम तक पहुंचा सकता है वहीँ सफ़दर हाश्मी द्वारा लिखित 'अपहरण भाईचारे का' ने वर्तमान देश की सांप्रदायिक सौहार्द की बिगड़ती स्तिथि को संभालने में भाईचारे का क्या योगदान हो सकता है उसे दिखाया गया है। दर्शको ने दोनों ही नाटको को सराहा। नाटको का निर्देशन अज़हर अली द्वारा किया गया। दोनों नाटको में मुख्य भूमिकाये कृष्णा गौतम, राम शर्मा, संजीव शर्मा, अवेस, फ़रहान खान, अदम्य, ज्योतिका, आरती एवं निकिता ने निभाई। मुख्य अतिथि - डॉ. गिरीश वर्मा अध्यक्ष - अरविन्द शर्मा विशिष्ट अतिथि - 1 डॉ दीपक श्रीवास्तव 2 संदीप रॉय, संचालन - डॉ. उदयमणि कौशिक, विशिष्ट उद्बोषक- रफ़ीक उर रहमान।

पुस्तक चर्चा

काव्य कृति 'लमझना' पर विमर्श

लक्ष्मीकान्त जवणे

''जनजातीय वाचिक परंपरा और रचनात्मक साहित्य (काव्य कृति लमझना के सन्दर्भ में)''

कवितायें दो तरह की होती हैं, एक तो ट्रिप (सैर) जैसी है- आनंद के लिए या कुछ सीखने के लिए इस सैर से वापस आने के बाद अपनी दिनचर्या में लौटने में कोई दिक्कत नहीं होती। दूसरी तरह की कविता जर्नी (यात्रा या सफ़र) सरीखी होती है जो मानस को बदलने की सामर्थ्य रखती है। इस यात्रा में जहां पहुंचते हैं, उस दुनिया और उस समय में बहुत कुछ हमारा अनजाना होता है, जो हमारे विवेक और संवेदना को किसी दूसरी पायदान पर ले जाता है। लौटे हुए आदमी के पास 'कुछ' उस दुनिया उस समय से लाया हुआ होता है जो अटककर संवेदना और स्थायी हिस्सा बन जाता है। लौटा हुआ आदमी बदला सा होता है।

'लमझना' दूसरे किस्म की काव्य कृति है। मैं पहले भी 'लमझना' पर लक्ष्मीनारायण पयोधि जी से बातचीत कर चुका हूँ, जो कला समय में प्रकाशित है, उसके भी कुछ बिंदु सहज रूप से आज के विमर्श में मैं शामिल करूंगा।

'लमझना' काव्य कृति अपने शीर्षक से शुरु होकर अपने विश्राम तक अनोखी और नई है। देखिये, कैसे ?

गूगल पर 'लमझना' टाईप कीजिये, जवाब आता है- इसे सुधारकर 'लजाना' या 'समझना' टाईप कीजिये। गूगल उसकी लाचारी और अज्ञान के लिए शर्मिंदा होने की बजाय, हमें गलत ठहराता है। विकासशील गूगल तथा बिलकुल नई निर्माणाधीन दुनिया यानि उत्तर आधुनिक दुनिया यानि पोस्ट मॉडर्न एज के पास फिलहाल फौरी जरूरत की जानकारियाँ और शब्द एकत्रित है।

यहीं से 'लमझना' या इस प्रकार की रचनात्मकता की भूमिका शुरु हो जाती है। हिन्दी के शब्दकोश 'नालंदा अद्यतन कोश' में भी 'लमझना' शब्द नहीं मिला।

ये दोनों तहकीकात या तलाशियां इसलिए सफल नहीं हुई क्योंकि गूगल और नई निर्माणाधीन दुनिया के जारी कामकाज में 'परंपरा' की परवाह नहीं है। यह इसलिए भी कि 'परंपरा' की समझ में उसके औचित्य (justification) को लेकर कुछ शंकाएं मौजूद हैं।

परंपरा पर खूब और सार्थक कहा गया है लेकिन मैं अपनी समझ भी जरूर रखूंगा।

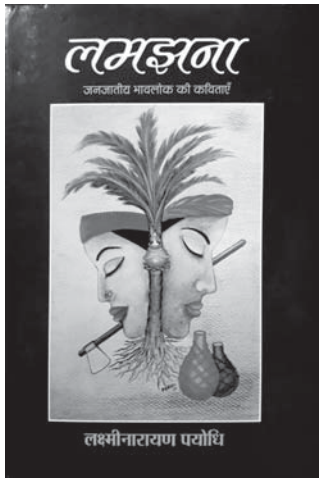

मेरी सोच में 'परंपरा' जीवन के संरक्षण (preservation) का मनुष्य द्वारा विकसित एक समाधानात्मक उपायहै।

यह उपाय निरंतर बिना चूके निगरानी चाहता है। यह वह उपाय है जिसमें हमेशा ताजगी के लिए छीलना और भराव जारी रखना पड़ता है अन्यथा इसके 'रूढ़ि' हो जाने का खतरा रहता है।

यह ऐसा पुल भी है जिस पर वर्तमान जब चाहे तब अतीत का चक्कर लगाकर आ सकता है और अपनी दृष्टि के आखरी छोर तक इस पुल को फैला भी सकता है ताकि भविष्य की उचित परवाह की जा सके।

वाचिक परंपरा वस्तुत: मनस्विता का विस्तार है। मनस्वी होना यानि मन जो बोलता और सुनता है, वह सह-अस्तित्व के लिए कितना कारगर है, उसका जानकार, उसका सटीक अनुमान लगाने वाला और प्रयोग करने वाला। मनस्वी जो वाचिकता (verbalism) का अधिपति हो, मनस्वी जो वाचस्पति (lord o speech) हो।

वैदिक ऋषियों समेत हाँदा गुनिया (पृष्ठ 17, पृथ्वी की जन्म कथा), वाचिक परंपरा के स्थापक, वाचस्पति।

हम लोगों द्वारा जनजातीय वाचिक परंपरा को समय के वर्तमान मुकाम पर मात्र उनकी ऐतिहासिक स्मृति के दायरे में देखना नितांत अपर्याप्त है। यह इसलिए भी कि नागर दृष्टि और जनजातीय दृष्टि में बहुत बड़ा फसला है।

जनजातीय परंपरा की सोच की सामग्रियां प्रमुखत: उनकी चेतना, देह और निसर्ग है, उसे इन तीनों की परवाह सम भाव से है, इसकी रचनात्मकता सामूहिक रहन सहन उनके समाज के तानेबाने को सम्हालती है कि उनका जीवन बचा रहता है। नागर परंपरा की सोच अक्सर अतिरेक का शिकार होते रहती है। इसका समभाव खंडित होते रहता है। चेतना पर देह तथा देह पर चेतना का हावीपन उजागर होते रहता है। निसर्ग, शोभा और सहूलियत के काम आता है। नागर परम्परा की सोच की रचनात्मकता चीजों के विनिर्माण में प्रकट होते रहती है, जहाँ सामूहिक जीवन की गुणात्मकता का औसत वैयक्तिक जीवन की गुणात्मकता के औसत से कम होता है।

मैं अब अपनी इतनी सी भाव-विचार साधन-सम्पदा के आधार पर ''लमझना'' को पढ़ता हूँ, उसमें ढूबता हूँ तो इस कृति को जनजाति पर एक 'दस्तावेज' के रूपाकार में पाता हूँ।

इसमें चिन्ह हैं, संकेत हैं, विवरण हैं, सुरक्षित स्मृतियाँ हैं, सुसंगत तार्किकता है जिसका इस्तेमाल 'प्रमाण या साक्ष्य' के तौर पर जनजातीयता के पक्ष में वर्तमान समय में बेहिचक किया जा सकता है 'लमझना' की दूसरी खूबी है कि इसमें आदिवासी पर किसी दूसरे ने करुणा नहीं उड़ेली है, पयोधि खुद आदिवासी हो गया है, उनके जीवन और किस्मत अर्थात नियति में वेदना के रास्ते प्रवेश कर गया है।

प्रवेश करते समय आखिरी बार इस सभ्यलोक पर कवि की दृष्टि की बानगी-

पृष्ठ 33/ कविता ''सृष्टि का पहला मनुष्य''/ कैसे रहा होगा सृष्टि का पहला जीवन / क्या था उसका रंग-रूप-आकार / रहा कैसा होगा पहला जीव / क्या अमीबा जैसा एक कोशीय / करता हुआ अपना ही विभाजन / बढ़ाता वंश / नर मादा की पहचान से मुक्त / .....

नर मादा की पहचान से मुक्त/.... यह पंक्ति ही काव्य में श्रेष्ठतम उद्देश्य को सामने रखकर कृति की दिशा तय कर देती है।

प्रवेश करने के बाद जनजाति भावलोक के मस्तक पर पयोधि का पहला तिलक, अभिषेक पृष्ठ 17 पर -

पृष्ठ 17/ संग्रह की पहली कविता- 'पृथ्वी की जन्म कथा'/ बस्तर के पालनार में/ जन्मी थी पृथ्वी/ ..... हाँदा गुनिया है/ गुनकर बिचारता है/ सगुन-अपसगुन/ भूत-भविष्य/ गुनकर बिचाता है यानि गैबी आवाज सुनता है।

पहले हर तरफ जल ही जल था/ जल में तैर रहा तुम्बा/ तुम्बे में बैठा था/ डड्डे बुरका कवासी/ बायलो के साथ/ भीमुलदेव चला रहे थे नाँगर/ .....

हाँदा एक ज्योतिषी (गुनिया) है, डड्डे बुरका कवासी पहला नर पुरखा, बायलो यानि पत्नी के साथ, भीमुलदेव गोंड जनजाति का कृषि देवता।

यदि दोनों को मिलाया जाए तो - कुल्हाड़ी जैसे काले धारधार व्यक्तित्व के हाथ में कलम। जनजातीयता का अखंड चित्रांकन।

उत्थान, प्रगति और वृद्धि के चिंतन वर्तमान में एक विचार 'विकास' में तिरोहित और समाहित हो चुके हैं या हो रहे हैं, क्योंकि 'धरती का सिकुड़ना' यानि भिन्न आचार विचार के लोगों का नजदीक आना और 'जड़ों की ओर लौटना' यानि अपनी नींव को खोजना।

इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन दोनों ही विपरीत धर्म है और चूंकि अपनी जड़ों को जानते हैं इसीलिये एक साथ मिलकर रह पाते हैं और उनकी रचनाधर्मिता परमाणु का रूप आकार ले पाती है।

लमझना में भीमुलदेव, लिंगापेन और बूढ़ादेव हैं, सृष्टि का जातीय मिथक है, सिडोली, माड़िया-दोरला (जनजाति), डोडबलई (वर्षाऋतु का आव्हान) है। दरअसल उनका पूरा समृद्ध समूचा भावलोक सम्पूर्ण परिचय व गरिमा के साथ मौजूद है। यहाँ संशय ना रहे इसलिए स्पष्ट शब्दों में कहूं कि पयोधि का 'लमझना' मात्र पूर्वार्द्ध नहीं है, इसका उत्तरार्द्ध अत्यंत पुष्ट है।

'हे राजन, किसका नेतानार, गोफन, बिच्ची और बच्चा, संगम भद्रकाली, और फकीरी के साथ मुस्कुराते हुए' कवितायें उन पर लादे गए तुच्छता बोध के विरुद्ध सशक्त चुनौतीपूर्ण गर्जनाएं हैं, जो उनकी सज्जता और सनद्धता का खुद पुष्ट प्रमाण देती हैं।

इस प्रकार लमझना को शुरु से आख़िरी तक पढ़ने पर एक पूरेपन का भाव पाठक के मन में आता है जो लेखक, विषयवस्तु और शिल्प के असर की गिरफ्त में पाठक को ले लेती है।

यह गिरफ्त ही साहित्य में रचनात्मकता की कसौटी है। साहित्य में रचनात्मकता का अर्थ सूचनाएं देना नहीं जीवन के विविध आयामों से सम्बन्ध बनाकर आकप्रित करने वाली जीवनन्तता भरना है।

पृष्ठ 72- कविता 'डोलार' - आम के ताने जैसी देह पर गुदे / तीतर के पंजे / फूली नहीं समा रही रॉजोली (कोरकू महिला का नाम) / गोदना की सुन्दरता पर / गोम (कनखजूरा) सरीखी लहरदार चोटी / उछलती चल रही पीठ पर / भदवाँ (लाल कीट) जैसा गजरा गेंदे का / ..... इतना आकर्षक और जीवंत बिम्ब। (बृजमोहन सिंह ठाकुर)

रंग आँखों को तृप्त करते हैं सुर कानों को। पर रंगों और सुरों के समानार्थी रंग या सुर नहीं होते। साहित्य में शब्दों से रचना की जाती है लेकिन शब्दों के पर्यायवाची हुआ करते हैं। साहित्यिक रचना 'रस' से तब लबालब भरी होती है जब शब्द खुद रंग या सुर बन जाए यानि उसमें लाये गए शब्द का विकल्प न मिले। इसमें गोम की जगह कनखजूरा करके देखिये- मधुरता खो जायेगी।

जनजातीय वाचिक परंपरा में 'लमझना' एक 'पाठ (lesson)' सबक की तरह हो गयी है। एक अक्षय प्रेरणा। एक अखंड दीपक, जिसके उजाले से नए पौधों को भरपूर क्लोरोफिल मिलेगा।

मेरे ऐसा कहने के पीछे की बाध्यता के रूप में कुछ दिलचस्प बातें हैं - सावित्री कहने से एक ऐसी पत्नी का यथार्थ जो अपने पति को मौत से भी छुड़ा लाये। यूरोपियन साहित्य में एक होता है 'सिंड्रेला सिंड्रोम' ऐसी महिला पात्र जो गरीबी से जूझा हो पर जिसे अपने भोलेपन और सच्चाई के कारण राजकुमार मिला हो।

अब देखिये पृष्ठ 98- शीर्षक 'सात भाईयों की लाड़ली', चहेती बहन 'लिटिया'। ऐसी बहन जिससे घर की रौनक रहे पर भाभियों के कहर से हलाकान।

मैं इसको 'लिटिया लेकुना' निरूपित करता हूँ, यह डाह, ईर्ष्या ननद के साथ उच्च, माध्यम और निम्न सभी वर्ग की महिलाओं के

बीच पाया जाता है, एकता कपूर के सीरियल्स में इस लेकुना को खूब गोंड जनजाति ने पृथ्वी के जन्म और पृथ्वी पर सृष्टि में जीवन की परिकल्पना की उन्होंने उनके देह-दिल की प्रयोगशाला से इसकी सैद्धांतिक पुष्टि कर दी।

सृष्टा भीमुलदेव मानवेतर इकाई है, जो पानी पर हल चलाकर धरती का अनुसंधान करते हैं। तुम्बे में विकसित डड्डे और उसकी बायलो को मिल जाती है जमीन, यह जमीन तलुवो के नीचे भी है, हथेलियों पर भी और कपाल में भी है, जीवन के सातत्य के लिए।

जल, प्रकृति और मानवीय जीवन का क्रम आधुनिक विज्ञान के अनुकूल है। यह कविता भीमुलदेव को प्रकृति (तुम्बा व जल), डड्डे और उसकी बायलो का सर्जक निरूपित नहीं करती, केवल पालनहार के दर्जे में रखती है।

जबकि अगली दो कविताओं में देवता लिंगोपेन और बूढ़ादेव जमीन जंगल बनाते हैं और जीवन उनका आशीष या आशीर्वाद के रूप में उनकी सदेच्छा का रोपा जाना है।

पृष्ठ 19 पर पहली कविता में कवि जनजातीय आस्थाओं और मान्यताओं को परखते हुए कहता है कि जितने मानव समुदाय होंगे उतने पालनार (स्थान) पर उतने ही भीमुलदेव और उतने ही डड्डे बुरका कवासी उतनी ही बायलो। यह कवि की आरोपित प्रत्याशा नहीं है बल्कि उनके भावलोक का नागरिक बनकर उनसे जाना हुआ नतीजा है। आज आदिवासी, किन्हीं भीमुलदेव, लिंगोपेन और बूढ़ादेव के नाम पर किसी रक्त रंजित रंजिश के अभिलाषी नहीं है।

साहित्य के मानचित्र पर आदिवासी अपने दारुण अनुभवों, धुंधली ऐतिहासिक स्मृतियों के साथ अभिव्यक्त हो रहे हैं।

निर्मला पुतुल, अनुज लुगुन और जसिंता केरेकेट्टा की कवितायें। ये कवितायें उनके द्वारा भोगी गयी लोमहर्षक वास्तविकताओं से संघर्ष के बयान हैं, जो वैश्विक सदयता को रुलाते हैं और झकझोरते हैं। इनकी तीव्रता धूमिल की याद दिलाती है। इन कविताओं में निर्दयी व्यवस्था के लिए चुनौती साफ दिखती है, जो साहित्य को भी ताकतवर बनाती है। जो इनसे छीना गया और छीना जा रहा है, उस पर रोष और विरोध इन कविताओं का केन्द्रीय स्वर है।???

'लमझना' यह बतलाती है कि 'जो छीना गया और जो छीना जा रहा है' वह क्या है ?

पृष्ठ 58- 'आज ही के दिन'/ भीड़-भाड़ / गाँव, जंगल, नदी, पहाड़/सब इकट्ठे एक जगह/..... एक दिन का तेवार / सिडोली (पुरखों के स्मरण का त्यौहार)/ आज ही के दिन / होती मनमानी / बनती हर पल नयी कहानी / .....

लोग और गाँव, जंगल, नदी, पहाड़ का एक साथ इकठ्ठा होना यानि गाँव, जंगल, नदी, पहाड़ का छीना जाना।

निर्मला पुतुल की कविता है- 'उतनी दूर मत ब्याहना बाबा'/ और तो और / जो हाथ लिखना नहीं जानता हो ''ह'' से हाथ / उसके हाथ में मत देना कभी मेरा हाथ

और लमझना में से 'लमझना' शीर्षक की पयोधि की कविता-

टंगिया (कुल्हाड़ी) उसका बहुत सुन्दर / काला धारदार / लगभग उस जैसा ही /...

दोनों कविताएं अलग भावभूमि पर उगी हैं, पर दोनों विवाह योग्य आदिवासी युवतियों की जीवन साथी की कामना का केन्द्रीय विचार दोनों कविताओं में समान हैं। आत्म निर्भर साथी की कामना दोनों में है। यहाँ पयोधि की कविता आदिवासी स्त्री पुरुष सम्बन्ध का पूर्वार्द्ध है और पुतुल की कविता उत्तरार्द्ध।

भुनाया जा रहा है। इस लेकुना या अभाव के लिए स्त्रैण मानसिकता में उदार आशयता (noble mindedness) की उपेक्षा है। यह 'लिटिया लेकुना' भारतीय साहित्य में 'सावित्री' या 'सिंड्रेला सिंड्रोम' एक समृद्ध प्रतीक की तरह है जो अविस्मरणीय उपमा (immortal simile) की तरह इस्तेमाल हो सकता है।

मुझे एक और बात ने स्पर्श किया- पृष्ठ 21, शीर्षक लिंगोपेन- किसान गोंड खेती भूल / रहने लगा / वन्य पशुओं के आखेट में मस्त / सृष्टि के नियमों को / करता ध्वस्त / जीव-जगत संत्रस्त / ..... क्रुद्ध पड़ापेन ने किया दण्डित.....

आदिवासी खानपान और रहन-सहन को लेकर एक जन मान्यता है कि सामिष आहार के प्रति उनका रुझान अधिक होता है परन्तु यहाँ देवता पड़ापेन पशुओं के शिकार के लिए दंड की व्यवस्था करते हैं। शिकार का यह निषेध जनजातीय जीवन की उनकी अपनी सोच की अत्यंत गहरी लाक्षणिकता है। एक साहित्यिक सन्दर्भ भी-

'लमझना' को दो तरह से बोला जा सकता है- (i) 'लम' एक जोड़ी और 'झना' दूसरी जोड़ी, इन दोनों जोड़ियों को मिलाकर बोलना और इसी उच्चारण में यह पुस्तक में प्रयुक्त है। (ii) 'लमझ' की तिकड़ी और अलग 'ना' का उच्चार।

लम;झना एक संज्ञा और लमझ;ना एक क्रिया।

''लमझ;ना'' क्रिया के रूप में एक साथ उलझना और सुलझना है जो 'ल म झ ना' को बांचने और आंकने के लिए एक अलग व्याकरण और अलग समीक्षा के पैमानों की तरफ ले जाता है।

जैसे कितनी बड़ी मुश्किल हो भाई अब तो लमझेंगे या हाँ हाँ लामझ लेंगे यार। मतलब उलझकर सुलझेंगे यानि अपनी मर्जी से ओखली में सर देंगे, मूसलों से निपटेंगे। इस प्रकार जनजाति वाचिक परंपरा में लमझना की प्रेरणा जनजातीय वेदना से तादात्म्य स्थापित करने में निश्चित ही एक निर्देशिका की तरह है-

पयोधि की पंक्ति के साथ -अन्न का मोक्ष निहित है भूख की निवृत्ति में

- पी टी-5 फॉरच्यून इन्क्लेव, कोलार रोड, भोपाल, मो. 9993622228

पुस्तक समीक्षा

लोककवि- ईसुरी-बुंदेली लोक साहित्य का आधार स्तंभ

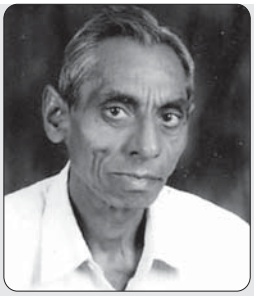

राधेलाल बिजघावने

लोक साहित्य किसी देश की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक पहचान है। बिना लोक साहित्य के किसी भी देश की शिष्टता-विशिष्टता के साथ उसके आर्थिक, राजनैतिक हालात और स्तर की कतई पहचान संभव नहीं। क्योंकि लोक साहित्य ही देश की विकास की गति को मल्टीनेशन से अवगत करता है। इसलिए भी लोक साहित्य में लोक भाषा, परिवेश तथा रहन सहन का पूरी तरह रिफ्लैक्शन होता है। लोक साहित्य से लोकांचलों की मुश्किलों, दुखों, पीड़ाओं कठिनाइयाँ अभाव का यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में ज्ञात होता है। 'लोक साहित्य में कला रूपों, कलारंगों कला-संगीत की मौलिक तस्वीर होती है।' अत: यदि किसी भाषा, और देश से उसकी लोक संस्कृति को छीन लिया जाये तो लगेगा, वह फ्यूज बल्व हो गया। जिसे कितने भी बार जलाया जाय पर जल नहीं सकता।

बुन्देली लोक साहित्य के प्रतिनिधि लेखक- श्यामसुन्दर दुबे की पुस्तक- 'लोककवि ईसुरी' का प्रकाशन हुआ है। जिसमें श्याम सुन्दर दुबे ने ईसुरी के काव्य लेखन की शिष्टता और विशिष्टता को रेखांकित किया है।

ईसुरी-बुन्देलखंड के बगौरा ग्राम के निवासी थे। जहाँ उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल पर बुंदेलखंड की धरती पर अपनी काव्य परंपरा और प्रतिभा का प्रतिपादन किया। ईसुरी छंदों की शास्त्रीय परंपरा के आग्रही नहीं थे। क्योंकि उस समय छंदों की काव्य शास्त्रीय परंपरा नहीं थी। उस समय गायकी परंपरा ही प्रचलित थी। ईसुरी यदि काव्य शास्त्रीय परंपरा से जरा भी झंपृक्त होती तो भी अपने समय के लोकप्रिय छंदों-यथा, कविता, सवैया, दोहा में भी अपनी रचनाएं प्रस्तुत करने छंदों में अपने को व्यक्त करले तो वे तत्कालीन साहित्यिक काव्य परिदृश्य में किसी भी तरह न्यून नहीं होते। ईसुरी भारतेंदु युग के रचनाकार थे।

ईसुरी अपने सीमित दायरे में भी बड़े कवि थे। समष्टि और व्यष्टि के व्यापक सरोकारों के कवि। आत्माभिव्यंजना में उनकी प्रेमपरक निष्ठा अंसदिग्धा और अचूक रही है।

ईसुरी के लिए रजऊ के प्रेम चिन्तन का परिणाम बन जाता है। इसलिए रजऊ को लासानी-सौंदर्य ईसरु की स्मृतियों में जिस अनेक बिम्बों में प्रकट होता है वे बिम्ब रीतिकालीन और आधुनिक युग की संधि सीमा के हैं। इसलिए ईसुरी की कविता में छद्म नैतिकता नहीं। वे अपने समय के सजग-समर्थ कवि थे।

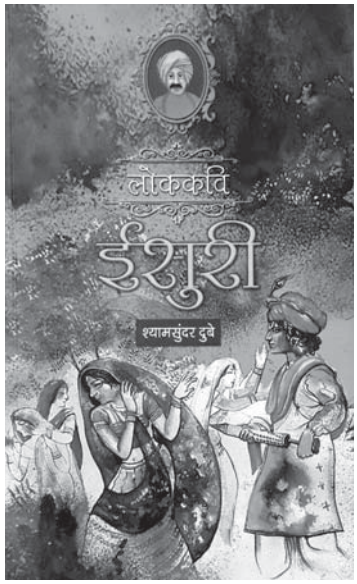

ईसुरी ने महुआ पेड़ों की कटाई और रेल स्लीपर बनाने का विरोध अंग्रेज शासन में किया था। इसलिए कि महुआ आदिवासी लोगों का भोजन का अंग है।

ईसुरी जनसंख्या वृद्धि का विरोध करने के साथ नाई धोबी जाति के संस्कारों से जुड़े थे। ये संत परम्परा के कवि थे। फाग में देह की भंगुरता, ईश्वर का अनुग्रह, जीवन की निस्सारता का बोध इनकी कविताओं में समावेश है। ऋतु वर्णन भी इनकी कविताओं में लोक चेतनापरक सूक्ष्म एवं व्यापक दृष्टि के साथ मिलता है। जिसमें स्वच्छंदतावादी, रहस्यवादी, आध्यात्मिकता का पुट होता है। मानवीय जीवन की उदात उछाल भी है। मालगुजारी प्रथा के विरुद्ध उनके मन में तीखा आक्रोश था।

ईसुरी ने फाग गीत लिखे, कृष्ण लीला का यर्थाप्रदत्त चित्रण अपनी कविताओं में किया। पारंपरिक रीति रिवाजों पर ईसुरी की कविताएं बेजोड़ रही है। जैसे- शादी, विवाह, विदाई गीत, प्रेम गीत, ईसुरी का स्त्री विषयक चिन्तन, गृहस्थी, सामाजिक व्यवस्था की कल्याणकारी चिन्तन और सामाजिक विकास को गती देती है। प्रेम की अनुभूति को अच्छा विस्तार दिया है कृष्ण के हृदय में राधा और राधा के हृदय में कृष्ण की स्मृति बिम्ब बहुत सार्थक है-

नैया रजऊ काऊ के घर में, विरथा कोऊ भरमें।
सब में है उर सबसे न्यारी, सब ठौरन में भरमें।
को कयै अलख-खलक की बातें, लखी न जाए नजर में।
ईसुर गिरधर रये राधा में, राधा रँय गिरधर में।

ईसुरी की कविताओं में ऊर्ध्व गामी विकास की दिशाएं खुलती हैं। उनमें मंगल कामना की भावनाएं थीं ने अपनी मृत्यु के समय भी चैतन्य थे। और कविता लिख रहे थे। अकाल पीड़ा की अंतर्दशा पर उनकी दुखद संवेदना का दृश्य बिम्ब इस प्रकार है-

'घर में नईयाँ अन्न को पउवा अब भये मोल बिसउआ।
मरे जात भूंकन के मारे नन्ने-नन्ने छउआ।
भाजी पालौ एक बचौ ना लौंच खाये कनकउआ।
सवा डेढ को नाज बिका रओ दो के हो गये मउवा।
घाटी अटके प्रान ईसुरी कब घर आएँ लठउवा।

ईश्वरी अपने समय की सामाजिक व्यवस्था से असंतुष्ट थे। ये पंचायतों के अंदरूनी समस्याओं का पर्दाफाश करते थे। वे भ्रष्ट व्यवस्था से जूझते थे वे वैज्ञानिक प्रगति और औद्योगिक प्रगति के मूल में निहित कारोबारी दृष्टि को भांप लेते थे। गांजा अफीम खराब के इस्तेमाल के पक्ष में नहीं थे।

गाँजो पियौ न पीतम प्यारे जर जें कमल तुम्हारे।
जारत काम बिगारत सूरत, सूखत रकत नियारे।
जौं तो आय साधु-संतन को अपुन गिरस्ती वारे।
ईसुर कात छोड़ दो ईखों अवै उमर के वारे।

ईसुरी ने गोपियों की मानसिकता को कुछ इस तरह प्रस्तुत किया है-

ऐसौ भलौ न मानस चमकौ, ऐसौ धरम-करम कौ।
का कयैं गोपी ऊसई रै गईं, दे छाती में गमकौ।
बौ नालायक ब्रज को वासी, बिगरौ बिना करम कौ।
बाँद भसम पौंचाई ईसुर, लेउ री खर्च खसम को।

ईसुरी के प्रारंभिक फागों में साखी पद के नाम से नामकरण किया है। दोहा, कंज रूचि में रचि गई कविता को साखी कहा जाता है। दोहा के साथ दुम लगाकर ऐसी फागों की रचना की जाती है।

प्रीतम प्रीत लगाये के बसन दूर न जाव।
बसो हमारी नागरी सो दरसन दे दे जाव।
नजर से टारे टरो नईं मोरे बालमा।

श्यामसुंदर दुबे लोक साहित्य के महत्वपूर्ण रचनाकार है। जिन्होंने बुंदेली और साहित्य के विकास में निश्चित ही महत्वपूर्ण योगदान दिया है। ईसुरी लोक कवि के व्यक्तित्व एवं कतित्व पर उनकी पुस्तक 'लोक कवि ईश्सुरी' महत्वपूर्ण है, जो लोक साहित्य की धरोहर के रूप में स्वीकार करने से इंकार नहीं किया जा सकता।

ईसुरी इतने सजग सतर्क कवि थे जिन्होंने अपने समय में व्याप्त, भ्रष्टाचार, अतिवाद, अंग्रेजी शासन को एवं माल गुजारी पृथा का अतिवाद का विरोध किया है तथा सामाजिक अव्यवस्था को व्यवस्थित करने की कामना की है। प्रकृति का चित्रण मोहक एवं आकर्षक है।

इन्होंने बुंदेलखंड की सामाजिक परंपराओं का लोकनृत्य, लोक संस्कृति और भाषा को नया जीवन दिया है। मानवीय नैतिक मूल्यों में गुणात्मक सुधार की जरूरी पहल भी की है। संत परंपरा को आगे बढ़ाते हुए अध्यात्म के प्रति आस्था जागृत की है। ईसुरी ने प्रेम संबंध, बिच्छेद, बिरह वेदना का जो चित्र प्रस्तुत किया है। वह बेमिशाल है। श्यामसुंदर दुबे ने ईश्वरी, लोक कवि की पुस्तक के माध्यम से बुंदेली साहित्य को निश्चित ही धनाड्य किया है।

कृति : लोककवि ईसुरी,

लेखक: श्याम सुन्दर दुबे, **प्रकाशक:** निदेशक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नेहरू भवन, 5-इन्सटीट्यूशनल एरिया, फैज-।।, बसंत कुंज नई दिल्ली-110070, **मूल्य:** दो सौ रुपये।

संपर्क : ई-8/73, भरत नगर (शाहपुरा) अरेरा कॉलानी, भोपाल-462639, मो. 9826559989

कला समय के संबंध में स्वामित्व तथा अन्य विवरण विषयक घोषणा पत्र
फार्म-IV

1.	प्रकाशन का स्थान	- जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
2.	प्रकाशन की अवधि	- द्वैमासिक
3.	मुद्रक का नाम	- भँवरलाल श्रीवास
	राष्ट्रीयता	- भारतीय।
	पता	- जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
4.	प्रकाशक का नाम	- भँवरलाल श्रीवास
	राष्ट्रीयता	- भारतीय।
	पता	- जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
5.	संपादक का नाम	- भँवरलाल श्रीवास
	राष्ट्रीयता	- भारतीय।
	पता	- जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	- भँवरलाल श्रीवास
	राष्ट्रीयता	- भारतीय।
	पता	- जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016

मैं भँवरलाल श्रीवास घोषणा करता हूँ कि ऊपर दी गई विशिष्टयाँ मेरे सर्वोत्तम ज्ञान और विश्वास के साथ सही हैं।

तारीख- 1 मार्च 2019

भँवरलाल श्रीवास
प्रकाशक के हस्ताक्षर

संस्था आयोजन

'कला समय' संस्था का संस्कृति-पर्व 3

कला समय संस्कृति, शिक्षा और समाज सेवा समिति भारतीय संस्कृति और पारंपरिक कलाओं के विभिन्न आयामों पर विमर्श और उन्हें प्रोत्साहित करने की दिशा में अग्रसर है। इन उद्देश्यों से हम विगत 21 वर्षों से कला समय द्वैमासिक पत्रिका प्रकाशित कर रहे हैं। पत्रिका के नाम की पहचान बनाये रखते हुए इसके उद्देश्यों के अनुरूप सांस्कृतिक गतिविधियों को विस्तार देने के लिये छह वर्ष पूर्व 'कला समय संस्कृति, शिक्षा और समाज सेवा समिति' का पंजीयन कराया गया।

संस्कृति और कलाओं को समर्पित इस संस्था द्वारा किसी एक आयाम पर एकाग्र कर प्रति वर्ष आयोजित किये जाने वाले उत्सव की यह तीसरी कड़ी है। इस बार का संस्कृति-पर्व जनजातीय संस्कृति और वाचिक परंपरा पर केन्द्रित है।

'संस्कृति-पर्व 3' की थीम के रूप में इस बार मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ की विभिन्न जनजातियों में प्रचलित विवाह की एक पारंपरिक पद्धति लमझना को चुना गया है। यह प्रथा धरजमाई बनाने से पूर्व बेटी के लिये योग्य वर की परख पर आधारित है।

जनजातीय परिवेश में बचपन से लेकर एक लम्बा कालखण्ड गुज़ारते हुए अध्येता की दृष्टि से उस विलक्षण संस्कृति की बारीक़ियों को समझने वाले यशस्वी साहित्य-मनीषी श्री लक्ष्मीनारायण पयोधि की हिन्दी काव्य में जनजातीय जीवन-संघर्ष, संस्कृति और संवेदना के पुनर्सर्जक के रूप में एक अलग पहचान है। इस उत्सव में लोकार्पित होने वाली पाँच काव्य-कृतियों में लमझना की कविताएँ जनजातीय जीवन की विभिन्न स्थितियों और सांस्कृतिक विशेषताओं की गहरी पड़ताल करती हैं।

लमझना के कवि ने जनजातीय वाचिक परंपरा में विद्यमान सूत्रों के आधार पर इसमें संकलित कविताओं के माध्यम से पृथ्वी की उत्पत्ति से लेकर मानव-सभ्यता के क्रमिक विकास की जनजातीय अवधारणाओं को समझने-समझाने का प्रयास किया है। इसी विशेषता के कारण 'कला समय' संस्था ने सरस्वती पर्व-3' के अंतर्गत विमर्श के केन्द्र में 'लमझना' को रखा है। 'लमझना' केवल कविता नहीं, जनजातीय वाचिक परंपरा में निहित मानव इतिहास और सांस्कृतिक सूत्रों को संरक्षित करने और आने वाली पीढ़ियों को अंतरित करने की दिशा में एक अनुकरणीय पहल भी है।

काव्यकृति लमझना के बहाने संस्कृति मर्मज्ञ डॉ. श्यामसुंदर दुबे की अध्यक्षता में जनजातीय वाचिक परंपरा और रचनात्मक साहित्य विषय पर वरिष्ठ कथाकार श्री युगेश शर्मा द्वारा संयोजित संगोष्ठी में विमर्श के लिये लोक और जनजातीय संस्कृति के अनुभवी अध्येता सर्वश्री बसंत निरगुणे, लक्ष्मीकांत जवणे, डॉ. महेशचन्द्र शाण्डिल्य और डॉ. धर्मेन्द्र पारे सहित विषय विशेषज्ञों ने वैचारिक भागीदारी की। इस विमर्श से विषय पर आगे कार्य करने वालों को एक नयी दिशा मिलेगी।

इस समारोह को अपनी उपस्थिति से गरिमा प्रदान करने के लिये वरिष्ठ संस्कृतिविद डॉ. कपिल तिवारी और डॉ. श्यामसुंदर दुबे की सारस्वत उपस्थिति ने इस आयोजन को भव्यता प्रदान की है। 'संस्कृति पर्व-3' के अवसर पर संस्था ने 'कला समय शब्द शिखर सम्मान' और 'कला समय रंग शिखर सम्मान' स्थापित किये हैं। इन सम्मानों के लिये संस्था द्वारा चयनित वरिष्ठ साहित्यकार श्री लक्ष्मीनारायण पयोधि और वरिष्ठ रंग साधक श्री आलोक चटर्जी ने ये सम्मान ग्रहण करने की स्वीकृति प्रदान कर संस्था को गौरवान्वित किया है। सुप्रसिद्ध रंगकर्मी श्री आलोक चटर्जी ने दोस्त नाट्य समूह के कलाकारों के साथ श्री पयोधि द्वारा काव्यकृति 'लमझना' का 'जमोला का लमझना' नाम से किये गये नाट्य रूपांतरण को अपनी अनुभवी निर्देशकीय दृष्टि से मंचित करने का बीड़ा उठाकर संस्कृति-पर्व-3 की सार्थकता में चार चाँद लगा दिये हैं। आर्ट फोटोग्राफी के

लिये प्रसिद्ध वरिष्ठ चित्रकार श्री मनोहर काजल के रेखांकनों, अपनी चित्रकला से दुनिया भर में यशस्वी हुए गोण्डीशैली के वरिष्ठ चित्रकार श्री आनंद कुमार श्याम के चित्रों की प्रदर्शनी में जनजातीय जीवन के इन्द्रधनुषी रंग थीम के अनुरूप इस उत्सव का आकर्षण बने हैं।

कला समय संस्था आयोजन

शास्त्रीय संगीत समीक्षा: आरोही - 2

अबीर-गुलाल वाला बिन्दास फागुनी गायन

आज फाल्गुन के शुक्ल पक्ष की 12वीं तिथि है। दो दिन बाद बसंत ऋतु का सिरमौर त्यौहार होलिका दहन है और अगले दिन धूम-धमाल का जन उत्सव- वसंत उत्सव (धूलि वंदन) अभी से दिलों पर दस्तक दे रहा है। वसंत के स्वागत के ऐसे माहौल में पं. कुमार गंधर्व की तेजस्विनी पुत्री कलापिनी कोमकाली का शास्त्रीय गायन सुनना, कुमार जी के गीत-वसंत की प्रस्तुति की वासंती यादों को तरोताज़ा करना है। भोपाल के रवीन्द्र भवन में सोमवार 18मार्च 2019 की शाम, यह आयोजन प्रतिष्ठित सांस्कृतिक पत्रिका 'कला-समय' ने अपनी 'संस्कृति, शिक्षा-समाज सेवा समिति' के जरिए 'आरोही-2' शीर्षक से किया। कलापिनी को शास्त्रीय गायन की तालीम, जन्मजात घर पर ही पिता पं. कुमार गंधर्व और माता विदुषी वसंधरा कोमकाली से मिली है। वह तालीम जो आधारभूत 'ग्वालियर घराने' की तो है, लेकिन घराने से बिल्कुल अलग खड़ी है। माता-पिता की समृद्ध सांगीतिक विरासत के अनुरूप कलापिनी ने रात के पहले पहर के कल्याण थाट के औड़व-संपूर्ण मधुरिम राग 'मारु विहाग' की मध्य लय तीन ताल की पारंपरिक बंदिश 'रसिया हो न जा' से की। राग का संक्षिप्त आलाप हूबहू कुमार जी के अंदाज में ये ऽऽऽऽ हो ऽऽऽऽ से शुरु होता है और हर तान, स्वर की ऐसी बुलंदी लेकिन मिठास लिए हुए है कि 'प नि सा ग म ग रे सा' स्वरों पर खुलने वाले दरवाज़े, खुलते जाने का एहसास श्रोताओं को पहिले ही खुद-ब-खुद होने लगता है। 'मारु विहाग' की अगली मध्यलय बंदिश और अधिक रूमानी है ''सुनो सखी सैंया जोगिया होईगा,, हमहूँ जोगिनी होई जाब'' जिसमें 'ग, प और नि स्वरों का न्यासयुक्त चलन कल्याण अंग की खूबियाँ उजागर करता चल रहा है, तो द्रुत तीन ताल की पारम्परिक लेकिन अधिक लोकप्रिय बन्दिश 'तरपत रैना-दिना' राग की रंजकता 'म ग रे सा रे सा' में विहाग के स्वरों का शीघ्र प्रयोग बंदिश को सम्मोहक बनाता है।

कलापिनी के गायन की अगली बंदिश वसन्त ऋतु के फागुनी माहौल के तकाजे को उभारती है, जो राग भूपाली में कुमार गंधर्व रचित अति लोकप्रिय बन्दिश है,

''अबीर गुलाल ले आई, अगरू चन्दन-सुगंध सुहाई
लाल, रंग होली खेलो, केशर रंग धूम मचाई ऽऽऽऽ''

कलापिनी की इस बंदिश के गायन में गंधार और धैवत स्वरों का आपस में वाद-संवाद जितना खिलता है उसका काफी श्रेय इस ललित-ललाम बंदिश के शब्दों को है। कुमार जी की इस जानदार बंदिश को अब ग्वालियर से इतर अन्य घरानों के कलाकार भी झूम-झूम कर गाते हैं, बल्कि कुमार जी के जीवनकाल में ही यह बंदिश संगीत जगत में अपना ली गई। अगले क्रम में कलापिनी एक तराना राग भूपाली में पेश करती हैं-

'देर-देर ताना देऽरे तदानी देरे ना', जिसमें ताल के बोल 'धा किट तक घुम किट तक घुम किड़नग' गुँथे हुए हैं। ग्वालियर घराने में गायकी की यह रचना 'त्रिवट' कहलाती है। तराना गायन के बीच कलापिनी ने बताया कि एक ध्रुवपद गायक उनके घर देवास आते थे, जो यह तराना गाते थे। कुमार जी के रसिक श्रोता जानते हैं कि वर्ष 1969 में कुमर जी ने मुंबई में 'ठुमरी-टप्पा और तराने' पर एक केन्द्रित-यादगार महफिल सजायी थी। वे कहते थे कि 'तराना अरूप है। उसमें स्वरों पर आघातों की बहुलता है।' फिर कलापिनी ने इस समीक्षक की फरमाइश पर राग 'सोहनी' में 3 ताल में निबद्ध होली-फाग पर्व को मुखर अभिव्यक्ति देती कुमार जी की मालवी बोली की बंदिश, ...

''रंग ना डारो श्यामजी गोरी पे रे
पेरी लई ये नयी सारी
सखी सहेल्या हँसकरे देंगी गारी''...

पेश की। यह बन्दिश भी अब अन्य घरानों के कलाकारों द्वारा अपने गायन की खास पेशकश के रूप में अपना ली गई है, बल्कि यूँ कहें कि होली- फाग के रंगारंग पर्व में नायिका केन्द्रित ऐसी बन्दिश अन्य घरानों में बहुत कम हैं। समापन में कलापिनी ने ब्रजभूमि की फाग पर 'खमाज' में गाया जाने वाला कवि पुरुषोत्तम का एक 'रसिया' गीत गाया...

''मृगनैनी तेरो यार री रसिया
जा के नैनों में कजरा सोहे
जा की नज़र तिरछी मन बसिया''

यह रसिया आने वाले रंग पर्व के एहसास-ओ-अंदाज़ में डूबा हुआ था। गाने में भोपाल के युवा फनकार रामेन्द्र सिंह सोलंकी ने बहुत सधे हुए हाथों से एक एक बोल की अदायगी में मिठास बरसाते अंदाज़ में तबला बजाया, जिसमें गाने को उभारने का जज़्बा तो बखूबी साफ महसूस होता था, लेकिन गायक पर हावी होने का आक्रामक तेवर ज़रा भी नहीं था। हारमोनियम पर भुसावल के जितेश मराठे की संगत गाने के सुरों को आत्मसात करके गाने को खूबसूरत बनाने वाली थी और वह भी तब, जब कि जितेश का हारमोनियम बहुत आधुनिक विशेषताओं वाला भी नहीं था।

आरोही-2 की इस संगीत महफ़िल के पहले सोपान पर भोपाल के युवतम कलाकार 'अमन मलक' का एकल हारमोनियम वादन हुआ। अमन, किराना-ग्वालियर घराने की गायिका (गुरु) जयश्री सवागुंजी के शिष्य हैं और गायन तथा अन्य वादन आयोजनों में संगत के साथ एकल वादन पर गुरु जयश्री से किराना घराने की गायकी की तालीम हासिल कर रहे हैं। हारमोनियम का एकल वादन अपने आप में बहुत मुश्किल है, क्योंकि अभी तक इसे हिन्दुस्तानी संगीत में निर्विवाद स्थापना नहीं मिल पायी है, फिर भी अमन का एकल हारमोनियम वादन में आकाशवाणी से 'बी' ग्रेड पा लेना कुछ अलग मायने इसलिए रखता है, चूंकि एक लम्बे अरसे तक गायन संगत में हारमोनियम आकाशवाणी पर लगातार प्रतिबंधित रहा।

अमन ने हारमोनियम वादन की शुरुआत संधि-प्रकाश राग पूरिया-'धनाश्री' से की और सम से शुरु करके तान का सुर-दर-सुर पकड़ कर अगले स्वर तक बढ़ते हुए फिर सम पर सहज ही वापिस आना अमन का रियाज जाहिर करता था। पूरिया धनाश्री की बंदिश में तीनों सप्तकों और खास तौर पर मध्य सप्तक से तार सप्तक तक लगातार ऊँगलियों की फिरत, सुरों की आवा-जाही अमन की कल्पनाशीलता थी। आगे अमन ने पूरिया धनाश्री से राग वसंत की बंदिश 'केतकी-गुलाब-जूही, चम्पक बन फूले' को सुरीले अन्दाज़ में बजाया और वादन को पीलू ठुमरी की गत से विराम दिया। एकल हारमोनियम वादन के साथ अच्छी तबला संगत उभरते हुए कलाकार मुईन अल्लावाले ने की, जो उनके 'कल के कलाकार' होने का संकेत है। आरोही-2 सांगीतिक आयोजन की शुरुआत में कार्यक्रम संयोजक (कला समय पत्रिका के सम्पादक) भंवरलाल श्रीवास ने 'कला समय' संस्कृति समिति द्वारा अब तक किए गए सांगीतिक आयोजनों की जानकारी संगीत महफिल के श्रोताओं दी और संस्था अध्यक्ष प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग ने सभी सहयोगियों और रसिक श्रोताओं का आभार व्यक्त किया।

इस अवसर पर सांस्कृतिक-संस्था 'कला समय' के सात सालों के आयोजनों की विस्तृत जानकारी देती स्मारिका का विमोचन गायिका कलापिनी कोमकाली द्वारा किया गया।

-राम मेश्राम ■

स्मृति शेष : शशिकान्त मुण्डी

मुखर शिल्पों के अंतर्मुखी शिल्पकार का मौन हो जाना

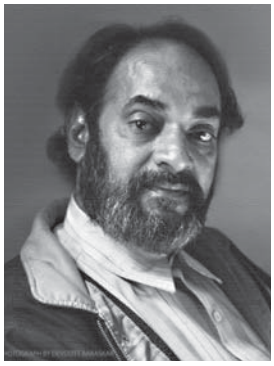

इन दिनों स्टैच्यू ऑफ यूनिटी की भव्यता और महत्ता के चलते अनायास ही आम जन मानस में शिल्प और शिल्पकारों को लेकर एक आदरयुक्त जिज्ञासा का वातावरण निर्मित हुआ है। शिल्कला को लेकर चल रही सकारात्मक और प्रशंसात्मक चर्चाओं के दौर में इंदौर के प्रतिभाशाली और महत्वपूर्ण शिल्पकार शशिकान्त मुण्डी के असामयिक निधन ने मालवा के कला क्षेत्र को स्तब्ध कर दिया।

अधिकांश कलाभिमूख छात्रों को चित्रकला की ओर अग्रसर होते देख कुछ अलहदा कला सीखने की वृत्ति ने मुंडी को छात्रावस्था से ही मूर्तिकला की ओर प्रेरित किया। एक धरातल पर सीमित आयामों में बद्ध चित्रकला की बनिस्बत बहुआयामी मूर्तिकला की चुनौतियों ने न सिर्फ उन्हें आकृष्ट किया वरन् बहुआयामी मूर्तिकला में निहित सृजन की संभावनाओं का आकर्षण उन्हें बांधता चला गया। उन्हें और उनके कला सहपाठियों का मूर्तिकला प्रेम कुछ यूँ परवान चढ़ा कि कला छात्रों के प्रयत्नों के चलते ग्वालियर में मूर्तिकला विभाग की मात्र स्थापना ही नहीं हुई वरन् इस अवधि में ललित कला अकादमी, दिल्ली द्वारा ग्वालियर में पाँचवे अखिल भारतीय मूर्तिकला शिविर का दो माही आयोजन भी किया गया। वरिष्ठ शिल्पकर्मी शंखों चौधरी, नारायण कुलकर्णी, बलबीर, खजूरिया, अवतारसिंह पंवार की सृजनरत् उपस्थिति का सान्निध्य तथा उनसे हुई कला चर्चाओं ने मुंडी में न सिर्फ मूर्तिकला के प्रति रुझान को बढ़ाया वरन् उनकी कला दृष्टि को व्यापक विस्तार दिया। प्रख्यात शिल्पकार मदन भटनागर के मार्गदर्शन में मूर्तिकला में विशेष योग्यता हासिल करने के अलावा मुंडी ने दो वर्ष तक स्वतंत्र कलाकार के तौर पर दिल्ली में काम करते हुए प्रसिद्ध मूर्तिकार एवं मेटल कास्टर विपिन गोस्वामी के सान्निध्य में मेटल कास्टिंग का प्रशिक्षण प्राप्त किया है।

मूर्ति निर्माण की प्रक्रिया में कला कौशल के साथ-साथ विभिन्न माध्यमों में शिल्प को ढालने के लिए उपयोगी तकनीकि ज्ञान की आवश्यकताओं की महत्ता को रेखांकित करते हुए वे कहते थे कि मूर्तिकला में अपेक्षित अधिक परिश्रम, बहुआयामी दृष्टि, ढलाई की तकनीकें आदि वे तत्व हैं जो मूर्तिकला को अधिक चुनौतीपूर्ण बनाते हैं। चित्रकला के अनुपात में मूर्तिकला के क्षेत्र में काम करने वालों की कमी के मामले में उनका मानना था कि विधा वांछित माध्यमों जैसे संगमरमर, तकनीकि साधन, सार्थक प्रशिक्षण व आवश्यक जगह की अनुपलब्धता वे तत्व हैं जो इस विधा में काम करने वालों को हतोत्साहित करते हैं। सामान्यत: अनुपलब्ध इन माध्यमों और साधनों की आसमानी कीमतें भी आर्थिक स्तर पर कलाकार को हतोत्साहित करती है।

चित्रकला के साथ-साथ मूर्तिकला में भी शैलियों और वादों का परिवर्तन न सिर्फ दृष्टिगोचर होता है, वरन् मूर्तिकला में भी अपने कला कौशल से अमूर्तवाद को प्रश्रय देने वाले अग्रणी शिल्पकारों में स्व. रामकिंकर, शंखो चौधरी मदन भटनागर, राघव कनेरिया, धनराज भगत आदि वे नाम हैं, जिन्होंने अपनी कल्पकता, रचनात्मकता तथा कला श्रेष्ठता के बूते शिल्पकला में समकालीन शैली को पूरी सार्थकता तथा शिक्षा से स्थापित किया है। समय की मांग और रफ्तार के साथ बढ़ते कला में अमूर्तवाद के प्रभाव के बावजूद भी श्री मुंडी को अधिकतर आकृतिमूलक शिल्प बनाना ही ज्यादा पसंद था। उनका मानना था कि दर्शकोन्मुख होने वाले सृजन में आकृति ही एकमात्र ऐसा माध्यम है जो भावों का सही तथा सार्थक संप्रेषण करती है। पारंपरिक शैली के साथ-साथ समसामयिक शैली में भी अपनी पहचान बनाने वाले मुंडी ने अपने शिल्पों में कभी असीमित अमूर्तन को प्रश्रय नहीं दिया, वे सोचते थे कि सिमातित अमूर्तन विषय संप्रेषण में बाधक होता है।

अनेकानेक राष्ट्रीय सम्मानों से पुरस्कृत श्री मुंडी के शिल्पों की एकल तथा समूह प्रदर्शनियों ने दिल्ली, मुंबई, ग्वालियर, इंदौर आदि कई कला दीर्घाओं में कला दर्शकों को गहरे तक अभिभूत किया है। आमंत्रित शिल्पकार की हैसियत से मुंडी ने महाबलीपुरम मद्रास, दिल्ली, आयफैक्स दिल्ली, ग्वालियर, भारत भवन भोपाल में आयोजित अखिल भारतीय मूर्तिकला शिविरों में अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज की थी।

श्री मुंडी के शिल्प जहां एक ओर ललित कला अकादमी दिल्ली, भारत भवन भोपाल, मध्यप्रदेश कला परिषद, विधान सभा भवन भोपाल, मद्रास और मुंबई के प्रतिष्ठित स्थानों पर स्थापित हो भारत के कला रसिकों से संवाद कर रहे हैं, वहीं उनके बनाए शिल्पों ने लंदन तथा अन्य देशों में संग्रहित हो भारतीय मूर्तिकला के परचम को फहराया है।

प्रसिद्धि की अपेक्षा से परे संपूर्ण समर्पण से कला साधना में रत् इस अंतर्मुखी कलाकार के शिल्पों में निहित कलामुखरता ने जहां कलापरिवेश को झंकृत किया है वहीं इनके बनाए रिलिफ म्यूरल ताज होटल ग्रुप मुंबई, राजस्थान, गुजरात तथा मध्यप्रदेश में अपनी उपस्थिति से कला परिदृष्य को श्रृंगारित कर रहे हैं। टेराकोट, पोलियर मार्बल, सिरेमिक आदि माध्यमों में शिल्प गढ़ने वाले श्री मुंडी का पसंदीदा माध्यम पत्थर और मेटल रहा है। ताउम्र पूरे समर्पण और विधा निष्ठा के साथ कार्यरत् मुंडी ने अपने कलाकौशल से राष्ट्रीय एवं अंतरर्राष्ट्रीय कला परिदृश्य में अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज की थी। ताउम्र मूर्तिकला के व्याकरण से संवादरत् रहा यह कलाकार निरंतर न सिर्फ अपनी कलात्मकता को निखारता रहा वरन् कलाशिक्षक के महत्वपूर्ण दायित्व का निर्वाह करते हुए शिल्पों के साथ-साथ कला शिष्यों को गढ़ता रहा।

हालांकि श्री मुंडी अब हमारे बीच नहीं है किंतु उनके रचे मुखर शिल्प वर्षों तक अपने सर्जक से सृजन दौरान हुए कला संवादों को हमसे साझा करते रहेंगे।

संदीप राशिनकर, 11 बी, राजेन्द्र नगर, इंदौर-452012 (म.प्र.)
मो. 9425314422, 8085359770

समवेत

साहित्य मनीषी सम्मान समारोह सम्पन्न

प्रतिष्ठित संस्था मालवा लोक साहित्य परिषद् द्वारा आयोजित साहित्य मनीषी सम्मान व पुस्तक विमोचन समारोह श्रीमती मधु मंडलोई की अध्यक्षता और श्रीमती माया बधेका उज्जैन, इतिहासकार श्री ललित शर्मा झालावाड़ संपादिका झेड़श्वेतिमा निगम उज्जैन के मुख्य आतिथ्य व डॉ. वर्षा नालमे के सफल संचालन में सम्पन्न हुआ। डॉ. मुक्ति पाराशर कोटा, डॉ. प्रेमलता चुटेल उज्जैन व श्री चन्द्र मान राही भोपाल को साहित्य का शब्द शिखर तथा डॉ. राम मनावत अकोदिया, श्री अक्षत मोहन व आशुतोष चित्रांश शुजालपुर तथा श्री सुरेन्द्र राजपूत 'हमसफर' देवास को शब्द सारथी सम्मान से सम्मानित किया गया। इस गरिमामय मंच पर ख्याल साहित्यकर श्री बंशीधर ''बंधु'' शुजालपुर द्वारा लोक छंद पर लिखी नई पुस्तक का विमोचन हुआ। इस अवसर पर श्रीमती माया बधेका ने पुस्तक का एक छंद का सस्वर गायन कर लोक धुन की मिठास घोल दी। झालावाड़ के इतिहासकार श्री ललित शर्मा ने पुस्तक की प्रशंसा की और शाजापुर जिले की पुरातत्व संपदा को समेटती अपनी ऐतिहासिक कृति का उल्लेख करते हुए शाजापुर जिले के महत्व पर प्रकाश डाला। डॉ. प्रेमलता चूटेल उज्जैन ने कहा कि संस्कृति और संस्कार हमारे पूर्वजों की धरोहर है। वक्त रहते इसे पृष्ठांकित कर संरक्षित किया जाना चाहिए वर्ना पाश्चात्य संस्कृति का अजगर हमारी इस धरोहर को निगल जाएगा। श्री चन्द्रभान राही ने अपने विचार रखे कि लोक संस्कृति प्राणवान और बलवान है आदि काल से लेकर आज तक असंख्य प्रहारों को झेल कर भी जिंदा है। यही आज हमें जड़ों से जोड़ती है।

इसके पीछे चिंतकों और विद्वानों का श्रम है। लोक छंदों के संरक्षण की दिशा में श्री बंशधर बंधु की यह कृति मील का पत्थर साबित होगी। कोटा से पधारी चित्रकार डॉ. मुक्ति पाराशर ने शहर के चित्रकार श्री अशोक सलूजा की चित्र प्रदर्शनी को सराहते हुए ''बोलते रेखांकन'' की संज्ञा दी। अंत में संस्था के अध्यक्ष श्री दिलीप तिवारी ने सभी का आभार व्यक्त किया।

सुप्रसिद्ध कथक नर्तक पंडित विजय शंकर का आकस्मिक निधन

लखनऊ घराने के सुप्रसिद्ध कथक नर्तक पंडित विजय शंकर का 17 मार्च को हुआ असामयिक और आकस्मिक निधन दिल को झकझोर देने वाली घटना है। विजय शंकर जी की आरम्भिक शिक्षा दीक्षा हैदराबाद में पंडित रामकृष्ण जी शुक्ल के सुयोग्य मार्गदर्शन में हुई। बाद में उन्होंने पद्म विभूषण पंडित बिरजू महाराज जी की शिष्यता स्वीकार कर अपनी कला को आगे बढ़ाया। विजय शंकर जी लय ताल के प्रकांड विद्वान थे। पैरों से बोल बहुत ही अच्छे कटते थे। अंग विन्यास प्रभावशाली थे। उनका विवाह प्रतिष्ठित तबला वादक पंडित किशन महाराज जी की बड़ी बेटी पूर्णिमा के साथ हुआ था जिनसे शुभ महाराज नामक एक होनहार और सुयोग्य पुत्र रत्न भी प्राप्त हुआ। शुभ दुनियाभर के संगीतकारों के साथ दुनिया भर में बजा रहे हैं। विजय शंकर जी लंबे समय तक कोलकाता की पदातिक संस्था से जुड़े रहे जिसका संचालन चेतना जालान और श्यामा नंद जी कर रहे थे। बाद में वे बनारस में स्थानांतरित हो गये। विजय शंकर जी ने एक बहुत ही अच्छे गुरु के रूप में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। उनके अनेक शिष्य और शिष्याएं सांगीतिक मंचों पर सक्रिय हैं। उनकी शिष्याओं का अभिनय पक्ष अत्यंत सशक्त होता है जबकि स्वयं विजय शंकर जी का नृत्य पौरुष प्रधान था उसमें लड़कियों वाले लटके झटके नहीं थे। उस युग में जब पुरुष नर्तकों की भाव भंगिमाएं स्त्रैण होती थी मर्दानगी की अदा लेकर मूँछ के साथ मंच पर नृत्य करते हुए लोगों को भाव विभोर कर देने की कला विजय शंकर जी के पास थी। उन्हें केन्द्रीय संगीत नाटक अकादेमी पुरस्कार सहित कई अन्य मान सम्मान भी मिले थे। हालांकि विगत कुछ वर्षों से उनकी मंचीय सक्रियत कम हो गई थी फिर भी एक गुरु के रूप में वे अपने दायित्व का निर्वहन कर रहे थे। उनका निधन सचमुच दिल को झकझोर देने वाला है।

इतिहास रचती निर्मिश ठाकर की नयी केरिकेचर प्रदर्शनी- महिलाओं पर केन्द्रित

महिलाओं के लिए कार्यरत प्रसिद्ध संस्था 'पिंकिश फाऊन्डेशन' द्वारा 'नोएडा, यू.पी.' में आयोजित महोत्सव 'नारी 2019' (16, 17 फरवरी 2019) में राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित कार्टूनिस्ट, व्यंग्यकार, अभिनेता निर्मिश ठाकर की अपूर्व केरिकेचर '101 GLOBAL WOMEN OF WORTH' तथा केरिकेचर प्रतियोगिता 'GUESS THE CARICATURE CONTEST' का आयोजन हुआ। ये दोनों कार्यक्रम महिला प्रतिभाओं के 101 केरिकेचर्स पर आधारित थे, अत: 'भारत में प्रथम' सिद्ध होकर दो नये राष्ट्रीय कीर्तिमान रच सकते हैं। (इस से पूर्व निर्मिश ठाकर ग्यारह राष्ट्रीय कीर्तिमान बना चुके हैं।)

उनके ये दो कार्यक्रमों में अनेक कलाकर्मी, साहित्यकार, फिल्म-टीवी के कलाकार तथा मीडियाकर्मी मौजूद थे। आयोजित केरिकेचर्स प्रतियोगिता के प्रथम पाँच विजेताओं को निर्मिश के शुभ

हाथों से इनाम भी दिये गये थे। निर्मिश के बनाये महिला प्रतिभाओं केरिकेचर्स प्रदर्शनी के अलावा बाहर रोड पर भी होर्डिंग्स पर प्रदर्शित किये गये वह भी एक घटना है जिसने बाहर भी एक नया आकर्षण रच दिया था।

म.प्र. की एकमात्र जल एकाग्र 'शिवम् पूर्णा' मासिकी पुरस्कृत

विगत माह दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी (भारत सरकार का संगठन, संस्कृति मंत्रालय) डॉ. महेश शर्मा (केन्द्रीय संस्कृति मंत्री, भारत सरकार) के द्वारा सजल मालवीय को जल संरक्षण (पर्यावरण) साहित्य व शिक्षा की शोधपरक मासिकी 'शिवम् पूर्णा' के उत्कृष्ट संपादन (2019) के लिए पुरस्कृत किया गया। प्रदेश की एकमात्र जल पर केन्द्रित पत्रिका नौ वर्षों से निरंतर नदी, तालाब एवं जल संरक्षण के लिए प्रतिबद्ध रही है, जिसे पूर्व में राज्य स्तरीय पुरस्कार (माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय व शोध संस्थान) द्वारा (2018) वर्ष का 'रामेश्वर गुरु पुरस्कार' भी दिया गया।

'कामड़ संतों की लोकवाणियां' लोकार्पित

उदयपुर। देवी हिंगलाज एवं अलख पंथ के आराधक 'कामड़ संतों की लोकवाणियां नामक ग्रन्थ का 27 फरवरी को उदयपुर में लोकार्पण हुआ। यह लोकार्पण भोपाल के जनजातीय लोकजीवन के प्रख्यात अध्येता डॉ. बसंत निरगुणे एवं राजस्थानी तथा जैन दर्शन के विद्वान डॉ. देव कोठारी द्वारा किया गया। इस अवसर पर लेखक डॉ. चम्पादास कामड़ तथा सम्पादक डॉ. महेन्द्र भानावत उपस्थिति थे। डॉ. निरगुणे ने कहा कि कामड़ संतों की लोकवाणियों का पहली बार

यह प्रकाशन संत-साहित्य के इतिहास को नये सिरे से मूल्यांकन करने की महत्वपूर्ण कड़ी सिद्ध होगा। डॉ. कोठारी के मत में यह संग्रह भक्ति के निर्गुण स्वरूप के मायम से जातिवाद के विरुद्ध सामाजिक समरसत को स्थापित करने में सहायक होगा। डॉ. भानावत ने बताया कि छह सौ पृष्ठीय इस ग्रन्थ में करीब 500 गेय वाणियों का संग्रह अपने आप में अलभ्य है।

रपट : डॉ. तुक्तक भानावत

संगीत समीक्षा:

काकली संगीत समारोह में ग्वालियर घराने के तीन रंग

इधर भोपाल की काकली संगीत संस्था का दो दिवसीय संगीत समारोह गत-16-17 मार्च 2019 को मायाराम सुरजन स्मृति भवन में आयोजित हुआ, जो ग्वालियर घराने के अमर संगीताचार्य पं. बाला साहेब पूछवाले के 101 वे जन्म वर्ष पर केन्द्रित था। पं. राजाभैया पूछवाले के प्रतापी पुत्र पं. बाला साहेब (15 दिसम्बर 1918- 2 जनवरी 2005) को गुजरे 19 साल बीत गए हैं, लेकिन उनके गायन और सांगीतिक अवदान की चमक ज़रा भी नहीं घुँधलायी है। समारोह में वरिष्ठ सितार वादिका डॉ. नीरा शर्मा और वरिष्ठ पखावज वादक पं. कौशल किशोर द्विवेदी को काकली संगीत सम्मान' और 250 से अधिक प्रकाशित ज्ञान-विज्ञान ग्रंथों के लेखक - ज्ञान कोशकार डॉ. परशुराम शुक्ल को 'काकली साहित्य सम्मान' से विभूषित किया गया। इस अवसर पर काकली संगीत संस्था के 2 अभिन्न संगीतकारों, दतिया के कुँवर दौलत सिंह बुन्देला (98वर्ष) और भोपाल के दयाशंकर साहू (66वर्ष) को आत्मीय संगीतांजलि अर्पित की गई, जिनका हाल ही गत 2 जनवरी और 12 फरवरी को आकस्मिक निधन हो गया।

बालासाहेब को समर्पित काकली संगीत महाविद्यालय की वार्षिकी 'अनंता' स्मारिका का विमोचन करते हुए मुख्य अतिथि एल. एस. बघेल (पूर्व आई. ए. एस.) ने कहा कि, 'मानव समाज का सच्चा मानसिक विकास संगीत और साहित्य से ही संभव है।' संगीत समारोह के पहले दिन की शाम बाला साहेब पूछवाले के प्रमुख शिष्य, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संगीत विभाग के अध्यक्ष डॉ. जयंत खोत ने ग्वालियर घराने का खयाल गायन प्रस्तुत किया जिसमें उन्होंने राग 'यमन कल्याण' में तिलवाड़ा ताल में निबद्ध टप - खयाल 'तुम तो हो साहेब जमाले - औलिया ... हजरत तुरकमान' गाया। टप - खयाल, टप्पे जैसी ही छोटी - छोटी तानों की अदायगी शैली में गाया जाता है। यमन 'कल्याण' में ही अगली प्रस्तुति मध्यलय-तीन ताल में निबद्ध पारंपरिक खयाल 'आले नबी औलादे अली की' थी, जिसका उतार इसी राग के एक ताल वाले तराने से हुआ। जयंत खोत की अगली प्रस्तुति राग 'केदार' में खयाल शैली में जयदेव के 'गीत गोविंद' की एक अष्टपदी थी, जिसके गायन की परम्परा ग्वालियर घराने के ऐतिहासिक गायकों हद्दू-हस्सूखाँ के समय से शुरु हुई थी। जयंत खोत के गाने का विराम, बाला साहेब रचित 'राग' श्याम कल्याण की द्रुतलय एकताल की बन्दिश के बाद, राग खमाज में बन्दिश की 3 ताल की ठुमरी से हुआ। जयंत खोत के खयाल गायन से स्पष्ट होता था कि खयाल गाते वक्त ग्वालियर घराने में %यादा आलापचारी नहीं की जाती, और गाना शुरु करते ही सीधे बंदिश पर आ जाते है। तबले पर प्रो. खोत के साथ बढ़िया संगत ग्वालियर के पं. मुन्नालाल भट्ट और हारमोनियम पर भोपाल के जितेन्द्र शर्मा ने की। तानपूरे पर प्रो. उत्कर्षा साठे ने गायन का माहौल निर्मित किया।

समारोह की अगली प्रस्तुति में बुन्देल खण्ड के बाँदा जिले के बबेरू कस्बे से आयी युवा पखावज वादिका प्रियंका मणि ने बहुत प्रभावी एकल पखावज वादन किया, जिसमें चार ताल में ठेके की लयकारियों के साथ जबरदस्त पठन्त और विभिन्न रंगारंग परनों की प्रस्तुतियाँ शामिल थीं, जिनमें 'देवी स्तुति परन' और 'होली परन' विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रियंका का पखावज वादन 7 मात्रा वाले ताल 'तीव्रा' में प्रस्तुत उनके कुदऊ सिंह पखावज घराने की खास परनों से हुआ। पखावज वादन के साथ हारमोनियम पर लहरा प्रियंका मणि के गुरु पं. राजेन्द्र द्विवेदी ने दिया। जो खुद कुदऊसिंह पखावज परंपरा के आकाशवाणी के 'ए' ग्रेड कलाकार हैं। पखावज को मर्दाना साज़ मानने वालों का रूढ़िवादी धारणा को, प्रियंका का पखावज वादन, करारा जवाब था।

वन स्थली विद्यापीठ की पूर्व संगीत विभागाध्यक्ष, काकली सम्मान विभूषित प्रो० नीरा शर्मा के सितार वादन में अल्पज्ञात ग्वालियरी तंत्रीवादन परम्परा की अनुगूँज थी। उन्होने राग 'नंद कौस' में आलाप जोड़ - झाला और विलम्बित- व द्रुत तीन ताल में दो आकर्षक बन्दिशें बजायी, और वादन को राग 'भैरवी' में एक ठुमरी से विराम दिया। लोकप्रिय युवा तबला वादक अशेष उपाध्याय की दमदार तबला संगत ने सितार वादन का मर्तबा कई गुना ऊँचा उठा दिया।

दूसरे दिन 17 मार्च, रविवार के संगीत समारोह में मैहर घराने के विख्यात सितारवादक पं. उमाशंकर मिश्र की शिष्या, दिल्ली की 'काज़ल जोशी' ने सितार पर उस्ताद अलाउद्दीन खाँ रचित राग 'हेमन्त' बजाया, जिसमें उन्होंने आलाप के बाद विलम्बित और द्रुत तीन ताल में दो गतें बजायीं और राग काफी में एक होरी धुन से सितार वादन को यादगार कर दिया। काजल जोशी के साथ लयदार तबला संगत भोपाल के मनोज पाटीदार ने की।

अगली सांगीतिक पेश कश में 'काकली सम्मान विभूषित' 'ध्रुवपद केन्द्र भोपाल' के पखावज - गुरु पं. कौशल किशोर द्विवेदी

का पखावज वादन था। पं. द्विवेदी सुप्रसिद्ध मृदंगाचार्य अयोध्या के स्वामी रामशंकर 'पागलदास' के शिष्य हैं। 'गुरु स्तुति परन' से पखाजव वादन की शुरुआत 12 मात्रा के चौताल में करके उन्होंने विभिन्न चक्करदार और फरमाईशी परनें बजायीं, जिनमें 4 'धा' वाली 'सुन्दर श्रृंगार परन' और अलग - अलग आवर्तनों वाली 'सार्थक परन' खास थी। इसके बाद 'साथ - परन' में लयकारियों के विभिन्न प्रकार पेश किए। पं. कौशल के साथ पखावज की संगत में उनके प्रतिभावान पुत्र रविशंकर द्विवेदीने पखावज पर ओजस्वी रेला और 'गणेश परन' बजायी। अंत में 'होली परन' बजाकर पं. कौशल किशोर ने पखावज वादन को अविस्मरणीय विराम दिया। जमीर हुसैन ने हारमोनियम पर लयदार लहरा, पखावज के साथ दिया।

दो दिवसीय संगीत सभा के आखिरी सोपान पर ग्वालियर घराने के ओजस्वी युवा गायक भरत तैलंग ने पं. ओंकारनाथ ठाकुर शैली में आलापचारी युक्त राग 'दरबारी' की बंदिश एकताल में गायी। इस मनोवैज्ञानिकबंदिश के बोल 'रे मन तू महाकपटी .....' गौरतलब थे, जबकि इसके ठीक विपरीत मनोदशा की पारंपरिक तीन ताल की बंदिश 'मधवा भर ला दे ' भरत ने पेश की। दोनों बन्दिशों में स्वर लगाव और स्वरों की सिलसिलेवार बढ़त से, स्वरानंद में लीन हो जाने वाली खयाल पेशकश भरत की थी। इसके बाद भरत ने राग बागेश्री में झपताल की पारंपरिक बंदिश 'बलमा मोरे तोरे संग' और एक तराना बागेश्री में ही गाया। पिताश्री संगीताचार्य पं. गंगाधरराव तैलंग रचित राग 'हंसध्वनि' की भक्ति मय एकताल की बन्दिश 'शंकर-भोलेनाथ' के बाद भरत ने गायन का समापन राग 'काफी' में बंदिश की एक ठुमरी ' 'जिन डारो रंग मानो गिरधारी' ' से किया। खयाल गायकी के साथ रियाज़दार अनुभवी तबला संगत पं. मुन्नालाल भट्ट की थी, और हारमोनियम संगत ज़मीर हुसैन ने की।

काकली संगीत समारोह की दोनों संगीत सभाओं की शुरुआत में काकली संगीत महाविद्यालय के छात्र-छात्राओं ''भगवती सक्सेना कृतिका सुसरला, शुभम- एम. समीक्षा जोशी, मिनाली जैन, श्रेयांश सिंगारे और आकांक्षा श्रीवास्तव ने उपप्रचार्या डॉ. दीप्ति गेड़ाम-परमार के निर्देशन में बाला साहेब पूछवाले की राग रागेश्री व हंस ध्वनि में खयाल बंदिशें और राग यमन कल्याण, छायानट, विहाग, श्याम कल्याण में तराने गाये। इसके साथ उस्ताद मजीद खाँ ने हारमौनियम पर और कु. आरती मारन ने तबले पर आकर्षक संगत की। पूरे संगीत समारोह में पं० बाला साहेब पूछवाले के ग्वालियर और भोपाल के अधिकांश परिवार जनों की उपस्थिति विशेष उल्लेखनीय रही।

रपट : राम मेश्राम

आपले वाचनालय में गूँजे स्त्री चेतना के स्पंदन और हुआ स्त्री शक्ति का अभिनन्दन

इंदौर। स्त्री जब स्त्री होने पर गर्व महसूस करने लगेगी तब होगा स्त्री का सशक्तिकरण । आदि काल से स्त्री को न सिर्फ शक्ति स्वरूपा कहा गया है वरन स्त्री की सशक्त उपस्थिति के बिना मानव और सृष्टि की कल्पना भी बेमानी है। उक्त विचार अतिथियों ने आपले वाचनालय में आयोजित 'स्त्री चेतना के स्वर'। कार्यक्रम में अपने अतिथीय उद्बोधन में व्यक्त किये। कार्यक्रम की अध्यक्ष वरिष्ठ कवयित्री अरुणा खरगोणकर, अतिथिद्वय वरिष्ठ साहित्यकार एवं वरिष्ठ चित्रकार डॉ. पद्मा सिंह व शुभा वैद्य ने अपने सारगर्भित उद्बोधनों में स्त्री विमर्श की सार्थकता पर प्रकाश डाला। कार्यक्रम के प्रथम सत्र में हुए स्त्री शक्ति के अभिनन्दन के अंतर्गत विभिन्न क्षेत्रों में सार्थक अवदान दे रही पद्मा राजेंद्र , संध्या ऊंटवाले ,सीमा परिहार ,उत्तरा पानसे एवं आर.जे. करिश्मा का सम्मान किया गया। दुसरे सत्र में हुए रचना पाठ में शहर की महिला रचनाकारों ने विभिन्न रंगों ,रूपाकारों एवं सरोकारों की रचनाओं से समा बाँध दिया। इस इन्द्रधनुषी साहित्य समागम में आभा निवसरकर, निति अग्निहोत्री, डॉ. दीपा व्यास, सुषमा अवधूत ,वनीता एकबोटे,शोभना चौरे ,डॉ. गरिमा दुबे, अमर चढ्ढा, नियति सप्रे, वैशाली पिंगले, रोशनी वर्मा, पद्मा राजेन्द्र, अलकनंदा साने एवं प्रतिमा देशपांडे ने अपनी रचनाओं का प्रभावी पाठ किया। कार्यक्रम का सुचारू संचालन श्रीति राशिनकर ने किया एवं अतिथि स्वागत का दायित्व निभाया शरयू राशिनकर, सुमति शहाणे, सतीश येवतिकर, हौसी चौरे ,शिव चन्द्रायण एवं किश्र पाटिल ने किया। आभार माना संदीप राशिनकर ने इस अवसर पर बड़ी संख्या में सुधि श्रोता उपस्थित थे।

रपट -संदीप राशिनकर

नन्हें कलाकारों की दुनिया

यह मुन्नियों और मुन्नों का संसार हैं । इसमें किसी भी किस्म की बिना छापवाले मनों की चौकड़ियाँ और कुलाँचे हैं। इन नवांकुरों की भावी छलांगों की सम्भावनाओं को यह पृष्ठ समर्पित हैं- कला समय।

यशि शर्मा को बेस्ट परफॉर्मेंस का अवॉर्ड मिला

दैनिक भास्कर समूह में डिप्टी न्यूज एडिटर के पद पर कार्यरत डॉ. देवेन्द्र शर्मा की बेटी यशि शर्मा को भोपाल के महर्षि किड्स होम स्कूल के वार्षिक उत्सव समारोह में बेस्ट परफॉर्मेंस का पुरस्कार मिला। छः वर्षीय यशि महर्षि किड्स होम की अरेरा कॉलोनी ब्रांच स्कूल में केजी-2 की छात्रा हैं। उन्होंने नृत्य और गायन प्रतियोगिताओं में हिस्सा लिया था। धार्मिक गीत 'ओ कान्हा अब तो मुरली की मधुर सुना दो तान' पर यशि का नृत्य काफी पसंद किया गया। इसके साथ ही यशि ने 'मैय्या यशोदा ये तेरा कन्हैया' और 'मोरे बंशी बजैय्या, नंदलाला कन्हैया' गीत पर नृत्य एवं अच्युतम केशवम, कृष्ण दामोदरम गीत प्रस्तुत किया। स्कूल प्रबंधन की ओर से उन्हें विशेष पुरस्कार भी मिला।

उत्कृष्ट तबला वादक कौस्तुभ भाग्यवंत

शिक्षा : कक्षा आठवीं

निवास : प्लॉट 5/बी-2/ रूम नं 5, खांडा कालोनी, न्यू पनवेल वेस्ट, जिला रायगढ़ (महा.)

गुरू : श्री यशवंत वैष्णव से शिक्षा ग्रहण कर रहे है।

उपलब्धि : विभिन्न तबला वादन प्रतियोगिताओं में हिस्सा लेकर प्रथम पुरस्कार। इन्हें तबले में सी.सी.आर.टी. दिल्ली से छात्रवृत्ति मिल रही है। बचपन से तबला वादन का गुणी कलाकार का खिताब अर्जित किया।

आप भी अपने बच्चों की प्रतिभाओं को उजागर करने हेतु इस पृष्ठ का हिस्सा बन सकते है - संपादक

स्त्री पैदा नहीं होती, उसे बनाया जाता है - सिमोन द बोवुआ

महिला प्रतिभाएँ वक्र रेखाओं में

- निर्मिश ठाकर

जूही चावला

कौशिकी चक्रवर्ती

किरन बेदी

मल्लिका साराभाई

कला समय

आगामी विशेषांक अप्रैल-मई 2019

पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर

4 मई 1919 - 3 अप्रैल 1988

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त पुरातत्ववेता, कला आचार्य, मुद्राशास्त्री, साहित्यकार, अभिलेखविद्, भाषाविद्, इतिहासज्ञ, समाजसेवी

पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर

की जन्मशती के निमित्त उनकी साधना और शख़्सियत पर विशेष....

अनुरोध

आलेख, संस्मरण, कविता, निबंध, आलोचना, दुर्लभ छाया–छवियों और रेखाचित्रों से सुसज्जित

कला समय

के विरल विशेषांक हेतु आमंत्रित है...

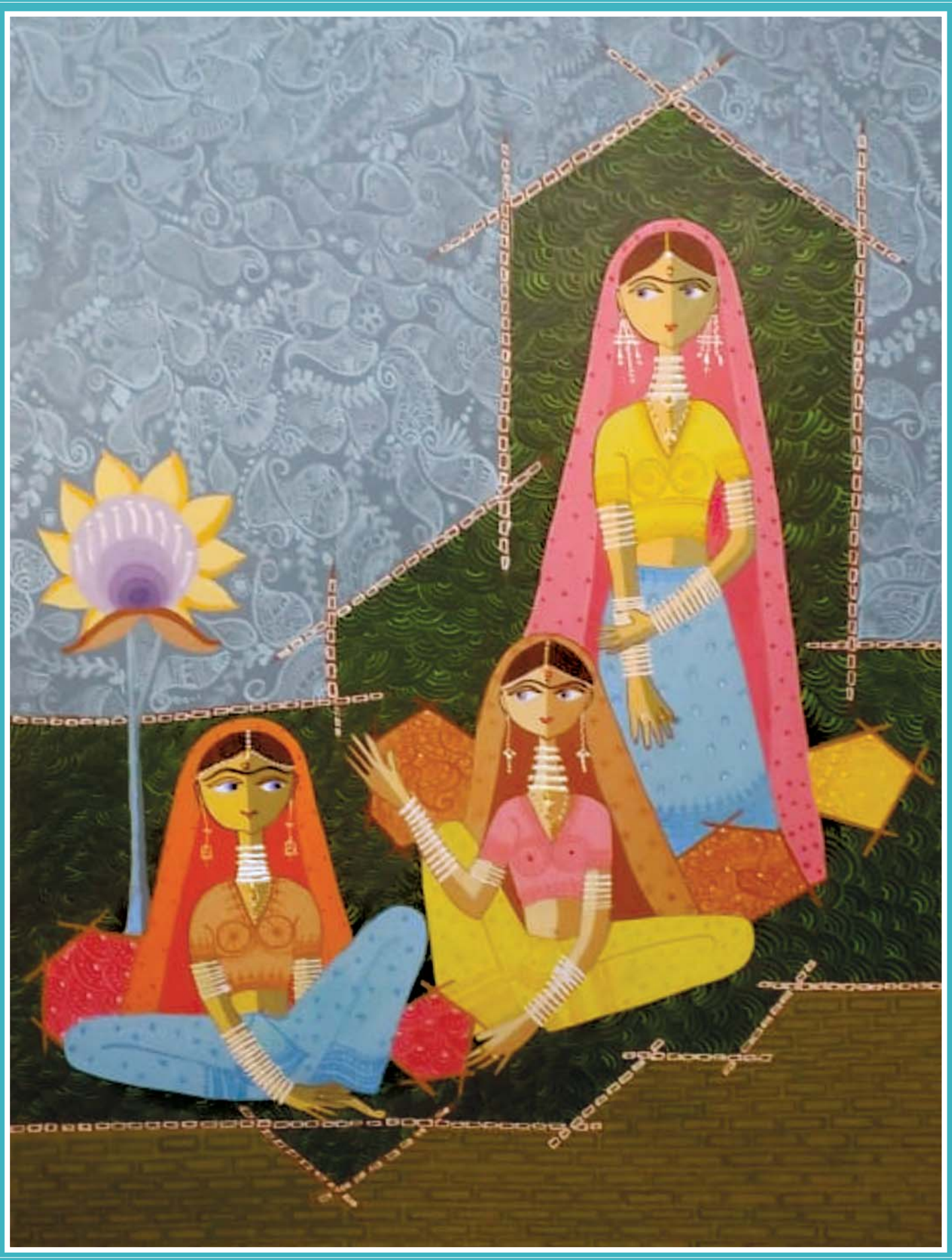

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा दृष्टि ऑफसेट, 36-37, प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन नं-1, एम.पी. नगर, भोपाल से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक-भँवरलाल श्रीवास